इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

BHDC-109
हिन्दी उपन्यास

खंड

2

'त्याग–पत्र' और 'मानस का हंस'

इकाई–6
जैनेन्द्र और उनके उपन्यास 119

इकाई 7
'त्याग–पत्र' की अंतर्वस्तु और संरचना–शिल्प 133

इकाई–8
'त्याग–पत्र' के चरित्र 147

इकाई 9
अमृतलाल नागर और उनके उपन्यास 161

इकाई 10
'मानस का हंस' का औपन्यासिक शिल्प 174

इकाई 11
'मानस का हंस' के चरित्र 193

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खंड 2 का परिचय

यह खंड 'हिंदी उपन्यास' पाठ्यक्रम का दूसरा खंड है। इस खंड में आप जिन दो विशिष्ट हिंदी के उपन्यासों का अध्ययन करेंगे वे उपन्यास हैं– 'त्याग–पत्र' तथा 'मानस का हंस'। 'त्याग–पत्र' उपन्यास हिंदी के विशिष्ट रचनाकार जैनेन्द्र द्वारा रचित है तथा 'मानस का हंस' उपन्यास प्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर द्वारा रचित है। इन दोनों उपन्यासों से संबद्ध विशिष्ट बिन्दुओं पर इस खंड की इकाइयों में चर्चा की गई है। इस खंड में कुल छः इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं :

इकाई–6 जैनेन्द्र और उनके उपन्यास

इकाई–7 'त्याग–पत्र' की अंतर्वस्तु और संरचना–शिल्प

इकाई–8 'त्याग–पत्र' के चरित्र

इकाई–9 अमृतलाल नागर और उनके उपन्यास

इकाई–10 'मानस का हंस' का औपन्यासिक शिल्प

इकाई–11 'मानस का हंस' के चरित्र

इस खंड में जैनेन्द्र और अमृतलाल नागर का परिचय देने के साथ– साथ उनके उपन्यासों का परिचय दिया गया है तथा उनकी विशेषताओं से परिचित कराया गया है। खंड की इकाई 6 और इकाई 9 में क्रमशः जैनेन्द्र तथा अमृतलाल नागर के उपन्यास साहित्य की जानकारी दी गई है। इकाई 7 एवं 8 में 'त्याग–पत्र' की कथावस्तु, भाषा, शैली और विशिष्ट चरित्रों पर विचार किया गया है। इकाई 10 तथा इकाई 11 में 'मानस का हंस' के कथानक, चरित्र, परिवेश, संरचना शिल्प आदि को विश्लेषित किया गया है।

इसी क्रम में हमने विशिष्ट उपन्यास से संबद्ध इकाई में उस उपन्यास के एक या अधिक अंशों की व्याख्या उदाहरणस्वरूप दी है। जिससे आप सुगमता से उपन्यास के अन्य अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकें।

पाठ्यक्रम के अंत में **'परिशिष्ट'** में दोनों उपन्यासों के कुछ प्रमुख गद्यांश व्याख्या हेतु दिए गए हैं। अतः उपन्यासों का अध्ययन गंभीरता से करें, जिससे आप गद्यांशों के संदर्भ को आसानी से जान–समझ सकें।

शुभकामनाओं सहित!

BHDC-109_4th proof.indd 118 8/6/2021 2:09:06 PM

इकाई 6 जैनेन्द्र और उनके उपन्यास

इकाई की रुपरेखाः

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 जैनेन्द्र कुमार का संक्षिप्त जीवन परिचय

6.3 जैनेन्द्र के साहित्य का परिचय

6.4 जैनेन्द्र के उपन्यासों की विशेषताएँ

6.4.1 प्रेमचंद और जैनेन्द्र

6.4.2 विषयवस्तु

6.5 जैनेन्द्र के उपन्यास

6.6 सारांश

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

यह इकाई हिन्दी के विशिष्ट उपन्यासकार जैनेन्द्र पर आधारित है। इस इकाई में जैनेन्द्र के जीवन और उनके साहित्य का परिचय देने के साथ–साथ उनके उपन्यासों का परिचय भी दिया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

जैनेन्द्र के संक्षिप्त जीवन परिचय से अवगत हो सकेंगे;

- जैनेन्द्र के साहित्यिक लेखन से परिचित हो सकेंगे;
- जैनेन्द्र के उपन्यास साहित्य की जानकारी दे सकेंगे; और
- जैनेन्द्र के उपन्यासों की कथावस्तु और उसमें निहित विषयों की विशेषताओं को जान सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

जैनेन्द्र कुमार हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कहानीकार और निबंधकार हैं। एक लेखक के रूप में जैनेन्द्र कुमार ने गद्य की रचना ही की है, कविताओं की रचना नहीं की। इस दृष्टि से वे प्रेमचंद के करीब हैं, जिन्होंने सिर्फ गद्य लेखन ही किया है। उपन्यासकार के रूप में उनका नाम अज्ञेय के साथ लिया जा सकता है। यद्यपि अज्ञेय ने कविता और गद्य दोनों में ही लेखन किया है। जैनेन्द्र कुमार व्यक्तिगत रूप से प्रेमचंद के करीब थे लेकिन लेखक के रूप में उन्होंने प्रेमचंद की परंपरा का अनुसरण नहीं किया। प्रेमचंद से भिन्न प्रकृति के साहित्य की रचना उन्होंने की। हिंदी संसार उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में जानता है। उनकी दृष्टि समाज पर नहीं बल्कि व्यक्ति पर केंद्रित रहती है। सुनीता, त्याग–पत्र, सुखदा आदि लगभग बारह उपन्यासों और अनेक कहानियों की रचना उन्होंने की। अपनी दार्शनिक और साहित्यिक मान्यताओं को उन्होंने अपने निबंधों में अभिव्यक्त किया। चिंतन के स्तर पर वे मनोविज्ञान के अतिरिक्त जैन धर्म और गाँधीवाद से प्रेरित थे। स्वाधीनता आंदोलन में उन्होंने सक्रिय भागीदारी की और जेल भी गए। उनके साहित्य को उनके जीवन के संदर्भ में भी देखा समझा जा सकता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

6.2 जैनेन्द्र कुमार का संक्षिप्त जीवन परिचय

जैनेन्द्र कुमार का जन्म जिला अलीगढ, उत्तर प्रदेश के एक गाँव कौड़िया गंज में 2 जनवरी 1905 में हुआ और मृत्यु 24 दिसंबर 1988 में हुई। इनका बचपन का नाम आनंदीलाल था। साहित्य–रचना जैनेन्द्र कुमार के नाम से की। हिंदी संसार अब उन्हें जैनेन्द्र कुमार के नाम से ही जानता है। जब उनकी उम्र दो वर्ष की थी तब उनके पिता की मृत्यु हो गई। उनका लालन–पालन उनकी माँ रमा देवी और मामा भगवान् दीन ने किया। उनकी आरंभिक पढ़ाई अतरौली और अपने मामा के गुरुकुल में हुई। मैट्रिक की परीक्षा उन्होंने पंजाब से पास की और आगे के अध्ययन के लिए बनारस आ गए। 1920 में जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया तब उनकी उम्र 15–16 वर्ष की थी। सन 1921 में असहयोग आंदोलन के प्रभाव से जैनेन्द्र ने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। उन्होंने कुछ वर्षों तक कांग्रेस का काम किया और स्वाधीनता आंदोलन के दौर में जेल भी गए। उनका आरंभिक जीवन काफी आर्थिक कष्ट में बिता।

उनकी पहली कहानी सन् 1928 में "विशाल भारत" में प्रकाशित हुई। उसका पारिश्रमिक 4 रुपया प्राप्त हुआ। इस पारिश्रमिक से उनका आत्मविश्वास बढ़ा और वे धीरे–धीरे साहित्य लेखन की और प्रवृत्त हुए। 1929 में उनका पहला उपन्यास "परख" प्रकाशित हुआ। साहित्य संसार ने नए लेखक का स्वागत किया। बाद में उन्होंने 12 उपन्यास और अनेक कहानियाँ लिखी, जो अब 7 खंडो में प्रकाशित हैं। नाटक, विचार साहित्य, ललित निबंध, यात्रा साहित्य, बाल साहित्य आदि अनेक गद्य विधाओं में उन्होंने रचनाएँ कीं। उन्होंने आलोचनात्मक रचनाएँ भी लिखीं। अपने वरिष्ठ रचनाकार प्रेमचंद पर भी उन्होंने लेखन किया। उनके "प्रेमचंद का गोदान यदि मैं लिखता" शीर्षक निबंध को बहुत सराहा गया। इस निबंध से उनके और प्रेमचंद की रचनात्मक दृष्टि की भिन्नता का निदर्शन होता है। उनके साहित्य पर उन्हें साहित्य अकादमी सहित अनेक संस्थाओं के पुरस्कार प्राप्त हुए। इन पुरस्कारों से साहित्य की दुनिया में उनकी साहित्यिक स्वीकृति का अंदाजा लगाया जा सकता है।

हालाँकि जैनेन्द्र कुमार ने विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रहण नहीं की, तब भी उनकी साहित्य सेवा को दृष्टि में रखते हुए और उनके साहित्यिक महत्व को देखते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय ने 1973 और आगरा विश्वविद्यालय ने डी.लिट् की मानद उपाधि प्रधान की। हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग ने 1973 में साहित्य वाचस्पति और गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ने विद्या वाचस्पति की उपाधि प्रधान की।

लेखक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए साहित्य अकादमी की प्राथमिक सदस्यता तथा प्रथम राष्ट्रीय यूनेस्को सदस्यता भी प्रदान की गई। उन्होंने भारतीय लेखक परिषद् की अध्यक्षता करने के साथ दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मलेन का सभापतित्व भी किया। भारत सरकार ने जैनेन्द्र को सन् 1971 में पद्म भूषण से सम्मानित किया। लेखक के रूप में जैनेन्द्र की स्वीकृति प्रारम्भ से ही हो गई थी। उनके प्रथम उपन्यास "परख" के लिए हिंदुस्तानी अकादेमी ने पुरस्कृत किया। फिर 1952 में 'प्रेम में भगवान' अनुवाद के लिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इन्हें पुरस्कृत किया। सन् 1961 में इन्हें "मुक्ति बोध" उपन्यास पर प्रतिष्ठित साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्रदान किया गया। उत्तर प्रदेश सरकार का शिखर सम्मान "भारत भारती" से इन्हें सुशोभित किया गया। इसके अलावा जैनेन्द्र को सन् 1970 में "समय और हम" पर सम्मानित किया गया। सन् 1974 में जैनेन्द्र को साहित्य अकादेमी फ़ेलोशिप प्रदान की गई। इन पुरस्कारों और सम्मानों से जैनेन्द्र कुमार के लेखन के महत्व और उनकी लेखन प्रतिबद्धता को जाना जा सकता है।

BHDC-109_4th proof.indd 120 8/6/2021 2:09:06 PM

6.3 जैनेन्द्र के साहित्य का परिचय

जैनेन्द्र कुमार मूलतः कथाकार हैं। इन्होने बारह उपन्यासों और कई कहानियों की रचना की है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं–फ़ाँसी (1929), वातायन (1930), नीलम देश की राज कन्या (1933), एक रात (1934), दो चिड़िया (1935), पाजेब (1942), जयसंधि (1949)। उनकी संपूर्ण कहानियाँ साथ भागों में संगृहीत की गई हैं। प्रेमचंद के रचना काल के दौरान ही जैनेन्द्र ने भी कहानियाँ लिखनीं प्रारम्भ कर दी थीं। उनकी कहानियों का विषय और उनमें चित्रित पात्र प्रेमचंद से भिन्न हैं। उन्होंने कहानियों में भी अपना ध्यान सामाजिक समस्याओं के स्थान पर व्यक्ति चरित्रों पर दिया। 'पत्नी' कहानी में पति राजनितिक कार्यकर्ता है। देश–सुधार की बड़ी बड़ी बातें करता है। परन्तु जैनेन्द्र की दृष्टि उनकी घरेलू, निरक्षर पत्नी पर टिकी रहती है कि इस स्वाधीनता आंदोलन के महत्वपूर्ण सामाजिक–राजनितिक आंदोलन के बारे में पत्नी क्या सोचती है ? उसी केंद्र से वे अपने पात्रों का जीवन चुनते हैं। तुलना करें तो यदि प्रेमचंद ने पति के जीवन को प्रमुखता दी, तो जैनेन्द्र को पत्नी का जीवन अधिक साहित्यिक लगा।

कथा साहित्य के अलावा जैनेन्द्र प्रारम्भ से ही निबंध लेखन की ओर भी प्रवृत्त रहे हैं। इसमें उन्होंने अपने चिंतन, साहित्यिक–सामाजिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति की है। "प्रस्तुत प्रश्न" नामक उनका निबंध संग्रह सन् 1936 में प्रकाशित हुआ। "साहित्य का श्रेय और प्रेम", "काम, प्रेम और परिवार" उनके चर्चित निबंध संग्रह हैं। इसके इलावा उन्होंने संस्मरण साहित्य भी लिखा है। 'मेरे भटकाव' उनकी महत्वपूर्ण संस्मरणात्मक पुस्तक है। इनके अतिरिक्त उन्होंने गाँधी जी की जीवनी के साथ दो आलोचनात्मक ग्रन्थ भी लिखे हैं। उन्होंने कई रचनाओं का अनुवाद भी किया है।

6.4 जैनेन्द्र के उपन्यासों की विशेषताएँ

इस पाठ्यक्रम में आप जैनेन्द्र के महत्वपूर्ण उपन्यास 'त्याग–पत्र' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में हम उनके उपन्यास साहित्य पर ही अपनी चर्चा को केंद्रित रखेंगे। जैनेन्द्र का रचना संसार आज़ादी से पहले (1929 से) लेकर आज़ादी के बाद तक फैला हुआ है। परख, सुनीता, त्याग–पत्र और कल्याणी उपन्यासों की रचना उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के दौर में की। उस समय हिंदी समाज में क्रांतिकारी आंदोलन की चर्चा भी जोरों पर थी।

6.4.1 प्रेमचंद और जैनेन्द्र

जैनेन्द्र गाँधी जी के समर्थक थे, लेकिन उनके परख, सुनीता, त्याग–पत्र, कल्याणी आदि उपन्यासों में स्वाधीनता आंदोलन की छाया नहीं है। उस समय तक प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' कहा जाने लगा था। जैनेन्द्र उनके निकटस्थ लोगों में से थे। वे प्रेमचंद का बहुत आदर करते थे। इसके बावजूद जैनेन्द्र ने प्रेमचंद का रास्ता नहीं अपनाया। प्रेमचंद के "गबन" और "गोदान" उपन्यास जैनेन्द्र के रचनारत समय में ही प्रकाशित हुए थे। हिंदी समाज के बहुसंख्यक पाठक प्रेमचंद के समर्थक थे, तब भी जैनेन्द्र ने अपने आप को उनके प्रभाव से बचाए रखा। एक लेखक के रूप में यह बहुत बड़ी बात थी। न केवल उस दौर में वरन् बाद में भी जैनेन्द्र ने राजनीतिक जीवन को अपने रचना के केंद्र में नहीं रखा। पृष्ठभूमि के रूप में भले ही क्रान्तिकारी फलक आए हों, जैसे "सुनीता" में हरि प्रसन्न क्रान्तिकारी दल का सदस्य है परन्तु जैनेन्द्र उसके पक्ष–समर्थन के लिए कुछ नहीं लिखते। इसके विपरीत उसकी आलोचना भी करते है। ऐसे पात्र जैनेन्द्र की दृष्टि में एकांगी और कुंठित है। हालाँकि उस समय जैनेन्द्र ने गाँधी जी के आंदोलन में भाग लिया था। अपनी शिक्षा बीच में छोड़ दी थी और दो एक बार जेल भी गए थे लेकिन यह सारा जीवन उनकी रचनात्मकता का प्रेरक नहीं

BHDC-109_4th proof.indd 121 8/6/2021 2:09:07 PM

बना। इसलिए हिंदी उपन्यास के विकास पर चर्चा करते हुए आलोचक इस तथ्य को रेखांकित करते हैं और जैनेन्द्र के महत्व को स्थापित करते हैं कि जैनेन्द्र ने प्रेमचंद के प्रभाव से अपने आप को मुक्त रखा और हिंदी कथा साहित्य को नई दिशा दी। जैनेन्द्र कुमार के लेखन से हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा प्रारम्भ हुई।

प्रेमचंद अपने उपन्यास में समाज का चित्रण करते हैं। उनमें आए हुए व्यक्ति–चरित्र उस समय का प्रतिनिधित्व करते है। होरी, हीरा, मनोहर सिर्फ व्यक्ति नहीं है, वे किसान वर्ग के प्रतिनिधि हैं जबकि जैनेन्द्र कुमार के यहाँ व्यक्ति, व्यक्ति ही बना रहता है। यहाँ भी समाज दिखाई तो देता है, लेकिन वह समाज उस व्यक्ति को समझने में पृष्ठभूमि का काम करता है। विधवा कट्टो हो या क्रन्तिकारी हरिप्रसन्न–सब व्यक्ति हैं। उनकी अपनी पहचान है। कट्टो 'कोई भी' विधवा नहीं है। इसी तरह हरिप्रसन 'कोई भी' क्रन्तिकारी नहीं है अपितु वे विशिष्ट चरित्र है। प्रेमचंद के संश्लिष्ट चरित्र भी संश्लिष्ट समाज को प्रस्तुत करने के लिए लाए जाते हैं। चूँकि प्रेमचंद को अपने उपन्यासों में समाज के यथार्थ का चित्रण करना था, इसलिए उनकी कथा भूमि विस्तृत होती थी। कथानक घुमावदार तरीके से समाज का चित्र दिखाता चलता था। जैनेन्द्र को यह सब नहीं दिखाना था। इसलिए उनके उपन्यासों में कथानक बहुत छोटा होता है। यही कारण है कि आकार में जैनेन्द्र के उपन्यास छोटे होते हैं और उनमें पात्रों की संख्या भी सीमित होती है। जैनेन्द्र का काम चार–पाँच पात्रों से चल जाता है जबकि प्रेमचंद के उपन्यासों में पंद्रह–बीस से अधिक पात्र होते हैं। समाज के ढाँचे के साथ उसके परिवर्तन का इतिहास भी उपन्यास में जगह घेर लेता है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में कहानी नाममात्र की होती है। यदि उसे संक्षेप में कहना हो तो आठ–दस पृष्ठों में उसका कथासार कहा जा सकता है। इसलिए उनके उपन्यासों में घटनाएँ बहुत कम होती हैं। जीवन में एक आध घटना घटती है तो लेखक उसकी संगति में उस पात्र का मनोविज्ञान बताने लग जाता है। उस घटना का विरोध या प्रतिकार या परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए यहाँ आकस्मिकता, कौतूहलता आदि कुछ नहीं होता। वहाँ जो है वह सब पूर्व निर्धारित है। उपन्यास पढ़ते समय हमें किसी काल्पनिक कथा का आनंद नहीं आता, वरन् पाठक, लेखक द्वारा प्रस्तुत जीवन को सहज रूप में देखते हुए चलता है।

6.4.2 विषयवस्तु

जैनेन्द्र के उपन्यासों की कथा व्यक्ति में अधिक चलती है। बाहरी वातावरण से उसका संवाद कम होता है। आलोचकों का मानना है कि प्रेमचंद वर्णन करते हैं जबकि जैनेन्द्र चित्रण करते हैं। वर्णन के क्रम में बहुत सी बातें स्वतः आ जाती हैं। चित्रण में कुछ अपने आप छूटता जाता है। जैनेन्द्र उपदेश नहीं देते। सामजिक परिवर्तन और सुधार की कोई आकांक्षा उनमें यानी उनके उपन्यासों में दृष्टिगत नहीं होती। वे बस अपनी बात कहते हैं। व्यंजना से वे काम चला लेते हैं। लेखक के रूप में जैनेन्द्र प्रयास करते हैं कि वे कथा में कम से कम बोलें। उनके पात्र भी कम बोलते हैं, आत्मचिंतन अधिक करते हैं। वे बाह्य अभिव्यक्ति कम करते हैं इसीलिए जैनेन्द्र कुमार के पात्रों का संघर्ष भीतरी होता है।

जैनेन्द्र के आरंभिक उपन्यास अधिक प्रभावशाली हैं क्योंकि उनमें अनुभव की ताज़गी है। उन्होंने प्रारम्भ में नयी दृष्टि से विषयों को रखा बाद में वैचारिक विकास के अभाव में उनके लेखन में पुनरावृत्ति और शुष्क दार्शनिक वक्तव्य अनायास आने लगते हैं। राम दरश मिश्र ने इसे "अनुभवहीन दार्शनिकता" कहकर रेखांकित किया है। इसके विपरीत प्रेमचंद की रचनात्मकता का विकास होता है। नई दृष्टि से वे यथार्थ की नई ज़मीन की पड़ताल करने में सक्षम हो जाते हैं। जैनेन्द्र वैसा नहीं कर पाते। जैनेन्द्र का वर्णन डायरी या मुख्य पात्र के साक्ष्य के माध्यम से चलता है। हम देखते हैं कि पारम्परिक उपन्यासों में उपन्यासकार सर्वज्ञ के रूप में सामने आता है। ऐसे उपन्यासकार सभी

BHDC-109_4th proof.indd 122 8/6/2021 2:09:07 PM

पात्रों को, कथा को, घटनाओं को जानते हैं। इसलिए सब पर टिप्पणी कर सकते हैं। पात्र और कथा को वांछित दिशा में मोड़ सकते हैं। 'त्याग–पत्र' उपन्यास में सारा वर्णन जज प्रमोद करता है। अतः वह सिर्फ उन्हीं घटनाओं का वर्णन कर सकता है, जिनका वह स्वयं साक्षी रहा है या उसने अनुभव किया है। जिस समय वह एक स्थान पर है, तब वह ऐसे किसी स्थान का वर्णन नहीं कर सकता जहाँ समानांतर रूप से दूसरी घटना घटित हो रही होती है। ऐसी शैली के उपन्यासों में प्रामाणिकता तो हो सकती है, गहराई भी हो सकती है, परन्तु विविधता नहीं हो सकती। वर्णनपरक लेखकों पर यह बंदिश नहीं होती। इसलिए विषय वस्तु की दृष्टि से जैनेन्द्र के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहे जाते हैं। जैनेन्द्र अपने उपन्यासों में परंपरागत नैतिकता को अस्वीकार करते हैं। परंपरागत नैतिकता को अस्वीकार करने के कारण उनके पात्रों के जीवन में पीड़ा का संचार होता है। जैनेन्द्र के अधिकतर पात्र अपनी इस पीड़ा को अपनी नियति मान लेते हैं। वे पीड़ा का प्रतिकार नहीं करते। इस पीड़ा से बचने का भीं कोई उपाय भी नहीं करते। थोड़ी देर बाद यह पीड़ा आत्म पीड़ा बन जाती है। वे मन ही मन इस पीड़ा से गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह आत्म पीड़ा जैनेन्द्र के उपन्यासों का प्रमुख भाव है। उनके लगभग सभी उपन्यासों में इस पीड़ा के विविध रूप देखे जा सकते हैं। यह आत्मोत्सर्ग और आत्मनिर्वासन एक जीवन मूल्य बन जाता है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में कुछ इस तरह के भाव, पात्रों में दृष्टिगत होते हैं कि 'मुझे इस दुःख में ही रहना है, इस दुःख से मुक्त नहीं होना है,' 'यही मेरी नियति है,' 'यह मेरे लिए अच्छी है, समाज के लिए भी अच्छी है।' 'त्याग–पत्र' की मृणाल का जीवन यही संदेश देता दिखाई देता है। तप या काया–कष्ट को ही मोक्ष का मार्ग मानने जैसी भावना दिखाई देती है।

इस पीड़ा से कुंठा का जन्म होता है। व्यक्तित्व में गाँठ पड़ जाती है। कुछ आलोचकों का विचार है कि जैनेन्द्र के पात्र भौतिक दृष्टि से असंगत हैं। ऐसा नहीं है कि उनमें यौन अभिरुचि नहीं है। वे नारियों के प्रति आकर्षित होते हैं। उन्हें आकृष्ट करने की कोशिश भी करते हैं, परन्तु जब नारी पूर्ण समर्पण के लिए आती है, तब वे भाग खड़े होते हैं। "सुनीता" में हरिप्रसन्न यही करता है। "सुखदा" और "व्यतीत" उपन्यासों में भी ऐसे प्रकरण हैं, इसलिए जैनेन्द्र के कुछ आलोचकों का मत है कि जैनेन्द्र का दर्शन जीवन और समाज में पलायन का दर्शन है। वे अपने नारी पात्रों को अनैतिकता की तरफ ढकेलते हैं और इसके लिए वे आध्यात्मिकता का सहारा ले लेते हैं। रामविलास शर्मा ने उन्हें 'साड़ी–जम्पर उतारवाद का लेखक' भी कहा है।

पात्रों की इस मनोवैज्ञानिक कुंठा से मुक्ति जैनेन्द्र के अधिकतम उपन्यासों में नारी देती है। "सुनीता" में हरिप्रसन्न की गाँठ सुनीता खोलती है। इसके बावजूद भी जैनेन्द्र में परंपरा और आधुनिकता का द्वंद है। वे आधुनिकता से आरम्भ करते हैं और परंपरा के सामने घुटने टेक देते हैं। उनके उपन्यासों के पात्र प्रेम में विश्वास रखते हुए प्रेम करते हैं। विधवा कट्टो भी प्रेम करती है, लेकिन किसी से शारीरिक संबंध नहीं रखेगी। विवाह भी कर लेगी लेकिन वैवाहिक संबंध नहीं रखेगी। उनके उपन्यासों में प्रेम के संदर्भ में देखा जा सकता है कि विचार के रूप में प्रेम बहुत पवित्र है, स्वाभाविक है, अच्छा है, वरेण्य है, लेकिन शारीरिक संबंधों से यह दूषित हो सकता है। अतः प्रेम को इस दूषण से बचाना है। जैनेन्द्र के पात्र यही करते रहते हैं।

बोध प्रश्न–1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :
   - क) जैनेन्द्र कुमार का जन्म ..... गाँव में हुआ।
   - ख) जैनेन्द्र की पहली कहानी सन् ..... में प्रकाशित हुई।
   - ग) जैनेन्द्र ने ..... उपन्यासों की रचना की।
   - घ) जैनेन्द्र की संपूर्ण कहानियाँ ..... भागों में संग्रहीत की गई हैं।

BHDC-109_4th proof.indd 123 8/6/2021 2:09:07 PM

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

क) जैनेन्द्र का संक्षिप्त जीवन परिचय लिखिए। (लगभग 8 पंक्तियों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) जैनेन्द्र के उपन्यासों की प्रमुख विशेषताएँ बताइए। (लगभग 10 पंक्तियों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.5 जैनेन्द्र के उपन्यास

जैनेन्द्र कुमार ने बारह उपन्यासों की रचना की है। इकाई के इस भाग में आप जैनेन्द्र के उपन्यासों की विषयवस्तु का अध्ययन करेंगे।

परख (1929)

'परख' जैनेन्द्र कुमार का पहला उपन्यास है जो सन् 1929 में प्रकाशित हुआ। इसमें चार प्रमुख पात्र हैं–सत्यधन, कट्टो, गरिमा, और बिहारी। कट्टो बाल विधवा है। पाँच वर्ष की अवस्था में ही वह विधवा हो जाती है। उस उम्र में उसको विधवा होने का अर्थ भी मालूम नहीं था। विधवा होने के बाद कट्टो न तो किसी और से विवाह कर सकती है और न किसी से प्रेम कर सकती है। समाज की दृष्टि में वह यह अधिकार खो चुकी है। कट्टो समाज की इस मान्यता का विरोध करती है। कट्टो के जीवन में दो युवक आते हैं–आदर्शवादी 'सत्यधन' और व्यावहारिक 'बिहारी'। यह दोनों मित्र हैं। दोनों कट्टो को पढ़ाना चाहते हैं। सत्यधन, इस बालविधवा कट्टो को पढ़ाने लगता है। कट्टो सत्यधन के आदर्शवाद से प्रभावित होती है और उससे प्रेम करने लगती है। सत्यधन भी कट्टो के प्रति आकर्षण महसूस करता है। बीच में एक पात्र गरिमा आती है जो बिहारी की बहन है। सत्यधन का विवाह गरिमा के साथ होने वाला है। यह जानकर कट्टो अपने विवाह के लिए खरीदी गयी सिंदूर की डिबिया और दर्पण गरिमा को भेंट

BHDC-109_4th proof.indd 124 8/6/2021 2:09:07 PM

कर देती है और सत्यधन के जीवन से हट जाती है। अब गरिमा और सत्यधन का विवाह हो जाता है। आगे चलकर वह और भी त्याग की देवी बन जाती है जब अपनी ससुराल से मिली हुई सारी सम्पत्ति वह सत्यधन को दे देती है। हालाँकि सत्यधन जब कट्टो का दिल तोड़ता है तब कट्टो को एहसास होता है कि अब वह सच्चे रूप में विधवा हो गयी है। इससे पूर्व उसे इस तथ्य का एहसास नहीं होता। हालाँकि उसका मन अब भी सत्यधन के लिए संवेदनशील है। आगे चलकर कट्टो का विवाह बिहारी से हो जाता है। लेकिन यह सामाजिक विवाह नहीं होता, आध्यात्मिक लोक का विवाह होता है। वह विवाह करने के पश्चात कहती है कि "आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ, वैधव्य सार्थक हुआ।" उपन्यास का यह अंत कट्टो के जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है, लेकिन इसमें लेखक कही भी विधवा विवाह का समर्थन नहीं करता। विधवा को विधवा ही रहने देता है। उपन्यास के इस निष्कर्ष के कारण यह जैनेन्द्र का साधारण उपन्यास ही माना गया। हालाँकि इसमें विकसित होने की असीम संभावना थी।

सुनीता (1935 ई.)

'सुनीता' उपन्यास में तीन प्रमुख पात्र हैं–सुनीता, उसका पति श्रीकांत और श्रीकांत का अत्यंत आत्मीय मित्र हरिप्रसन्न। तीनों एक दूसरे से बहुत प्रेम करते हैं। उपन्यास के केंद्र में सुनीता है जो इन दोनों पात्रों को जोड़ती है। सुनीता के पति को लगता है कि उसका मित्र हरिप्रसन्न अपने जीवन में प्रसन्न नहीं है। वह कुंठित और अव्यवस्थित है। इसी कुंठा के कारण वह क्रांतिकारी बना रहता है। वह दरअसल क्रांतिकारी नहीं है। तब श्रीकांत इस प्रयास में लगता है कि हरिप्रसन्न को कुंठा से मुक्त किया जाए। उसको लगता है कि वह अकेला यह काम नहीं कर सकता। इसलिए वह अपनी पत्नी सुनीता की मदद लेना चाहता है। हरिप्रसन्न श्रीकांत के घर जब आता है तो अपने मित्र की पत्नी सुनीता के प्रति आकर्षित होता है। श्रीकांत अपनी पत्नी को कहता है कि वह हरिप्रसन्न को हर तरह से प्रसन्न रखने का प्रयास करे। यह संकेत सुनीता की समझ में आ जाता है। सुनीता के प्रति हरिप्रसन्न के मन का यह आकर्षण आसक्ति तक पहुँच जाता है। इस बीच में श्रीकांत योजना के तहत कचहरी के काम का बहाना बनाकर कानपुर चला जाता है ताकि उसकी अनुपस्थिति में सुनीता और हरिप्रसन्न का सम्बन्ध प्रगाढ़ हो सके। इधर सुनीता चाहती है कि हरिप्रसन्न उसकी छोटी बहन के प्रति आकर्षित हो जाए, लेकिन हरिप्रसन्न उसमे रुचि नहीं लेता। अंत में हरिप्रसन्न आधी रात को सुनीता को जंगल में ले जाता है, जहाँ वह अपने क्रांतिकारी मित्रों से मिलने वाला है तथा सुनीता को उस दल में शामिल करवाना चाहता है। वह काम के वशीभूत होकर सुनीता को सम्पूर्णता में प्राप्त करने की इच्छा ज़ाहिर करता है। सुनीता तो इसके लिए तैयार ही थी। वह उसके सामने निर्वस्त्र हो जाती है। नारी के इस तेजस्वी रूप को देख कर हरिप्रसन्न भाग खड़ा होता है। सुनीता को घर पहुँचाकर वह चला जाता है। उसकी मानसिक गाँठ निकल चुकी है। सुनीता वापस घर आकर पूर्ववत् अपनी गृहस्थी में रम जाती है। उसके मन में कोई अपराध बोध नहीं है क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह अपने पति की इच्छा के अनुरूप किया है। अतः पति–पत्नी का रिश्ता पुनः सामान्य हो जाता है। यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि जिन्हें क्रांतिकारी कहते हैं वे दरअसल "कुंठित, टुटा हुआ और कमजोर" चरित्र है। वह सहज नहीं है। इस तरह सुनीता में भी विद्रोह की मानसिकता के बीच सात्विक प्रेम का जीवन स्थापित हो जाता है।

त्याग–पत्र (1938)

'त्याग–पत्र' जैनेन्द्र का अत्यंत चर्चित और प्रशंसित उपन्यास है। इसका देश–विदेश की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इसकी प्रमुख पात्र मृणाल है। उपन्यास में मृणाल के दुःख–दर्द का वर्णन उसका भतीजा करता है। उसका नाम प्रमोद है। वह अपनी बुआ को बहुत चाहता है। मृणाल किशोरावस्था में अपनी सहेली के भाई से प्रेम

BHDC-109_4th proof.indd 125 8/6/2021 2:09:07 PM

कर बैठती है। इसकी जानकारी जब उसकी भाभी को होती है तो वह मृणाल की पिटाई करती है। फिर उसका भाई उसकी अधेड़ उम्र के व्यक्ति से शादी कर देते हैं। मृणाल को लगता है कि पति तो परमेश्वर है, इसलिए वह अपने पति को अपने विवाह से पूर्व प्रेम की सारी कथा बता देती है। पति को यह बात बर्दाश्त नहीं होती और वह उसे मार पीटकर घर से निकाल देता है। पति के घर से निकाली जाने के बाद मृणाल भटकती हुई एक कोयले वाले के पास जाती है। जहाँ उसे अपना शरीर सौंपना पड़ता है। अंत में वह बहुत दीन–हीन अवस्था में जीवन जीती है। उसका भतीजा उससे मिलने आता है। वह अपनी बुआ को अपने साथ ले जाना चाहता है, परन्तु बुआ उसे इसलिए मना कर देती है कि कहीं मृणाल के कारण प्रमोद को कोई परेशानी उठानी न पड़े। इस उपन्यास पर अगली इकाई में आप विस्तार से अध्ययन करेंगे। अतः इस इकाई में उसकी कथा के सार–संक्षेप की जानकारी ही पर्याप्त होगी।

कल्याणी (1939)

यह भी आज़ादी से पूर्व का उपन्यास है। इसकी रचना "गोदान" के प्रकाशन के बाद सन् 1939 में हुई। जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों की तरह यह भी मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसकी केंद्रीय पात्र कल्याणी है। कल्याणी के अलावा एक उपन्यास का कथावाचक है। कल्याणी का पति डॉ. असरानी है। यह भी आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। कल्याणी शिक्षित नारी है। वह विदेश में जाकर वहाँ से शिक्षा प्राप्त करके और डॉक्टर बनकर लौटी है। विदेश में रहते हुए कल्याणी का एक व्यक्ति से प्रेम हो जाता है। कल्याणी के भारत लौट आने के बाद उसका वह प्रेम, विवाह में परिणत नहीं हो पाता। यहाँ आने पर उसका विवाह डॉ. असरानी से हो जाता है। असरानी लोभी प्रकृति का व्यक्ति है। कल्याणी उस व्यक्ति को पसंद नहीं करती। इस कारण पारिवारिक स्तर पर वह तनावपूर्ण जीवन जीती है। इस विवाह से उसकी नारी भावना कुंठित हो जाती है। उसके सपने बिखर जाते हैं और वह अस्थायी तनाव में अपना जीवन बिताती है। लोभी के अलावा डॉ. असरानी पारम्परिक भारतीय मानसिकता का पुरुष है, जो नहीं चाहता कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष से किसी तरह का संवाद भी रखे। कल्याणी को लगता है कि विवाह में स्त्री, पत्नी बन जाती है। अर्थात् उसका अस्तित्व पति पर निर्भर हो जाता है। वह अब स्त्री नहीं है, पत्नी है। विवाह से पूर्व तो वह 'कन्या' है। भारतीय समाज में स्त्री का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है। कल्याणी बहुत सरल स्त्री है। उसको लगता है कि शादी या डॉक्टरी में से किसी एक को ही वह चुन सकती है या तो वह अपनी शादी को सँभाले या डॉक्टर का कर्तव्य निभाए। दोनों भूमिकाओं में रहना कल्याणी को मुश्किल लगता है। यदि कोई उसके लिए यह चुनाव कर दे कि दोनों में से उसे कौन सी भूमिका निभानी है तो वह आराम से उसे निभा सकती है। इस कशमकश और द्वंद्व में वह टूट जाती है। वह कोई भी भूमिका ठीक से सँभाल नहीं पाती। अंततः इसी पीड़ा में उसकी मृत्यु हो जाती है। इस करुण निष्कर्ष पर उपन्यास समाप्त हो जाता है।

सुखदा (1953)

'सुखदा' उपन्यास का प्रकाशन देश की आज़ादी के बाद सन् 1953 में हुआ। इस उपन्यास में भी जैनेन्द्र की पूर्व औपचारिक परम्पराओं का ही पालन किया गया है। इसमें भी प्रमुख पात्र नारी है–सुखदा। उसी के नाम से उपन्यास का शीर्षक रखा गया है। इस उपन्यास में भी नारी पीड़ा की प्रतिमूर्ति है। उसकी पीड़ा का कारण भले ही अलग हो। सुखदा सुख–सुविधाओं में पली–बढ़ी युवती है। उसके मन में विलासी जीवन जीने की आकांक्षा थी। लेकिन उसका विवाह सामान्य निम्न मध्य वर्गीय परिवार में हो गया। इससे उसके सपने चकनाचूर हो गए। उसके पति का वेतन बहुत कम था और परिवार पर आर्थिक दायित्व अधिक था। वैसे भी सुखदा उससे विवाह नहीं करना चाहती थी।

BHDC-109_4th proof.indd 126 8/6/2021 2:09:07 PM

वह किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह करना चाहती थी। थोड़े दिनों तक आर्थिक कष्ट सहन करने के बाद वह अपने पति से उदास रहने लगी। इसी उदासी में वह क्रांतिकारी दल में शामिल हो गई।

अब वह क्रांतिकारी दल के नेता से प्रेम करने लगती है। पति को पता चलता है। यहाँ जैनेन्द्र की विचारधारा सामने आती है। पति इस बात का बुरा नहीं मानता। वह इसकी अनुमति दे देता है। इसी बीच में क्रांतिकारी दल के एक नेता हरीश की गिरफ्तारी पर सरकार इनाम घोषित करती है। हरीश चाहता है कि अपने ही दल का कोई व्यक्ति पुलिस को सूचना देकर सरकार से इनाम ले ले। हरीश पकड़ा जाता है और घोषित इनाम सुखदा के पति को मिलता है। यह सुखदा के लिए अत्यंत कष्टकर बात है। वह अपने पति को खूब खरी–खोटी सुनाती है। सुखदा का पति लज्जित होता है, परन्तु इसमें उसकी कोई गलती नहीं है। सुखदा भी मानती है कि "मेरे स्वामी रोष के पात्र नहीं हैं, करुणा के पात्र हैं।" फिर भी सुखदा अपना क्रोध उस पर उतारती है। इस पूरे घटनाक्रम में सुखदा बीमार हो जाती है। उसे उस समय का लाइलाज क्षय रोग हो जाता है। उसे अस्पताल में भर्ती करवा दिया जाता है। उसके जीवन की लौ बुझने वाली है। इसी दौर में वह आत्मकथात्मक शैली में इस उपन्यास को लिखती है। आत्मकथात्मक शैली में लिख पाने के कारण इसमें अनुभव की प्रामाणिकता दृष्टिगत होती है।

विवर्त (1953)

इस उपन्यास का प्रकाशन भी सन् 1953 में हुआ। यह जैनेन्द्र के पुराने उपन्यासों की तरह नारी की पीड़ा पर केंद्रित उपन्यास नहीं है। इसमें दो प्रमुख पात्र हैं–जितेन और भुवनमोहिनी। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं। दोनों शादी करना चाहते हैं। इसमें एक सामाजिक, आर्थिक दिक्कत है। जितेन गरीब है और भुवनमोहिनी अमीर है। दोनों का विवाह कैसे चलेगा, यह चिंता स्वाभाविक है। भुवनमोहिनी के पिता प्रतिष्ठित जज हैं। वे खुले विचारों के हैं। भुवनमोहिनी चाहे जिससे विवाह कर ले उन्हें आपत्ति नहीं। अपने संशय को दूर करने के लिए वह जितेन को कार में बिठाकर ले जाती है और शादी का प्रस्ताव रखती है। यहाँ फिर अमीर–गरीब की ग्रंथि आ जाती है और रिश्ता टूट जाता है। अब भुवनमोहिनी का विवाह एक सुखी संतुष्ट परिवार में हो जाता है। इधर जितेन के मन में गाँठ पड़ जाती है कि भुवनमोहिनी सुख से क्यों रह रही है। वह उससे बदला लेना चाहता है। यद्यपि भुवनमोहिनी अंत तक जितेन पर विश्वास करती है और जैनेन्द्र कुमार की अन्य नायिकाओं की तरह उसे सब सुख, सुविधाएँ देती रहती है।

जितेन क्रांतिकारी बन जाता है और एक ट्रेन को उड़ा देता है जिसमें कई व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। इसके बाद वह भागकर भुवनमोहिनी के घर में छिप जाता है। भुवनमोहिनी उसका सहज–स्नेह से स्वागत–सत्कार करती है। परन्तु बदले की भावना से पीड़ित जितेन उसके घर से गहने चुराकर भाग जाता है। जैनेन्द्र कुमार के अन्य उपन्यासों की तुलना में इसमें घटनाएँ अधिक घटती हैं। इधर जितेन का एक व्यक्ति भुवनमोहिनी के पास आता है और पत्र देता है कि यदि वह पचास हज़ार रूपये दे तो उसके गहने उसे वापिस मिल सकते है। भुवनमोहिनी मना कर देती है। जितेन नाटकीय ढंग से भुवनमोहिनी से मिलता है, उसे बंधक बना लेता है और बहुत यातनाएँ देता है। इन सबसे त्रस्त भुवनमोहिनी कहती है कि वह उसे मार क्यों नहीं देता। लेकिन इतना सब होने पर भी वह जितेन से स्नेह करती रहती है। इससे जितेन की गाँठ खुलने लगती है और वह सामान्य होने लगता है। उपन्यास के अंत में जितेन, भुवनमोहिनी के गहने वापिस उसे देकर घर भेज देता है। यह पूरी घटना/स्थिति मनोवैज्ञानिक उपचार की एक विधि बताने जैसा प्रतीत होती है।

व्यतीत (1953)

'व्यतीत' का प्रकाशन भी 1953 में ही हुआ। इस उपन्यास की कथा उपन्यास के पात्र जयंत के इर्द–गिर्द घूमती है। जैनेन्द्र कुमार के अन्य उपन्यासों के पुरुष पात्रों की तरह

BHDC-109_4th proof.indd 127 8/6/2021 2:09:07 PM

ही जयंत भी कुंठाग्रस्त है। वह अपनी दूर की चचेरी बहिन अनीता से प्रेम करता है। अब सामाजिक मर्यादा के अनुसार उसका विवाह अनीता से नहीं हो सकता। जैनेन्द्र कुमार अपने उपन्यासों में इस सामाजिक मर्यादा की रक्षा करते है, भले ही उनके पात्र इस मर्यादा के विरुद्ध या उससे कुछ अलग सोचते रहते हैं। अनीता का विवाह हो जाता है और वह अपने वैवाहिक जीवन से खुश है। अनीता का पति अनीता को प्रसन्न रखने का पूरा प्रयास करता है। जयंत अपने अकेलेपन से दुखी है। अनीता भी उससे अपने संबंध बनाए रखती है। जयंत का जीवन गरीबी में बीत रहा है। वह गंदी बस्ती में रहता है। वह एक बार में नौकरी करता है। अनीता अपने पति से जयंत के लिए ठीक–ठाक नौकरी तलाश करने के लिए कहती है, परन्तु जयंत इस सब से उदासीन रहता है।

अनीता उसका विवाह करवाना चाहती है। उसके लिए किसी संपन्न और सुन्दर लड़की को तलाशती है। इधर जयंत कविताएँ लिखता है। उसके जीवन में कई लड़कियाँ आती हैं और अंत में वह चन्द्रकला से विवाह कर लेता है। परन्तु वह उसके साथ खुश नहीं रह पाता, क्योंकि उसके मन में तो अनीता बसी हुई है। जयंत का व्यवहार असामान्य होता जाता है। उसके उदासीन और हठी स्वभाव को देख कर उसकी पत्नी उसे छोड़ कर चली जाती है। जयंत अकेला है। वह युद्ध में भाग लेने जाता है और घायल होकर लौटता है। थोड़ा ठीक होने के बाद अनीता उसके पास जाती है और उसे समझाने का प्रयास करती है। वह उसे झटक देता है। तब अनीता भी क्रोधित हो जाती है। ऐसा उनके संबंधों में पहली बार होता है। फिर भी अनीता के मन में जयंत के लिए प्रेम बचा रहता है, जैसा जैनेन्द्र की सभी नायिकाओं की चारित्रिक विशेषता है। वह जयंत की यौन इच्छाओं को पूर्ण करने में सहायक होती है। परन्तु इससे जयंत के भावनात्मक जगत और व्यवहारिक जगत में कोई सामंजस्य नहीं बैठता। अंततः इस उपन्यास में जीवन की व्यर्थता का बोध होता है। उपन्यास की यह परिणति जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों के समान ही है।

जयवर्द्धन (1965)

यह उपन्यास सन् 1965 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास को जैनेन्द्र कुमार ने डायरी शैली में लिखा है। उपन्यास के प्रमुख पात्र जयवर्धन हैं, जो राष्ट्राधिपति हैं। जयवर्धन इला के साथ एक ही महल में रहते हैं। दोनों में महान प्रेम है लेकिन उनके प्रेम में शारीरिकता का लेश मात्र भी नहीं है। यह प्रेम दिव्य और उदात्त किस्म का है। जैनेन्द्र कुमार इस प्रकार के प्रेम–संबंधों का समर्थन अन्य उपन्यासों में भी करते आए हैं। जयवर्द्धन एक न्यायप्रिय राजा हैं। वे विधि संगत रूप में प्रजा का पालन करते हैं। उनके आचार–विचार एक दम पावन है। उपन्यास में आचार्य स्वामी चिदानंद आते हैं। वे जयवर्द्धन और इला के विवाह की तिथि निश्चित करते हैं। सब लोग भी इसी प्रतीक्षा में थे। सब विवाह होने की कामना करते हैं। जयवर्द्धन और इला के विवाह के निमंत्रण पत्र बँट गए हैं। सभी नाते–रिश्तेदारों को बुलावा जा चुका है। आचार्य और आश्रमवासियों की उपस्थिति में दोनों का विवाह संपन्न हो जाता है। सब कुछ विधिवत रूप में होता है। कुल दस मिनट में सारी कार्रवाई हो जाती है।

इसके बाद उपन्यास में नाटकीय मोड़ आता है। सवेरे सब उठते हैं तो पता चलता है कि जयवर्द्धन यहाँ है ही नहीं। ऐसा नाटकीय मोड़ देख कर सब चकित हो जाते हैं। पाठक भी आश्चर्यचकित होते हैं कि ऐसा क्यों हुआ? यहाँ आकर पता चलता है कि उपन्यास के नायक जयवर्धन का विवाह संस्था में विश्वास ही नहीं है। यहाँ फिर जैनेन्द्र की प्रेम और विवाह के द्वैत की समस्या उपस्थित हो जाती है। इसके बाद उपन्यास में विचार, दर्शन, सामाजिक आदर्श, राजनीतिक घात–प्रतिघात सब आ जाते हैं और उपन्यास के इस वैयक्तिक प्रेम सम्बन्ध को बोझिल तथा उबाऊ बना देते हैं। बाहर की जो समस्याएँ हैं वे हैं ही, मूल समस्या इला तथा जय का कुंठाग्रस्त व्यक्तित्व है। इस

BHDC-109_4th proof.indd 128 8/6/2021 2:09:07 PM

व्यक्तित्व के कारण जयवर्द्धन राज्य की समस्याओं को भी सँभाल नहीं पाता। यह मनुष्य की मानवीय निजता और शासन की सामाजिकता का द्वंद्व है। इस कारण उनका विवाह नितांत निजी नहीं रह पाता और वह भी सामाजिक–राजनीतिक प्रश्न बन जाता है।

मुक्तिबोध (1965)

यह उपन्यास सन् 1965 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास पर जैनेन्द्र कुमार को 'साहित्य अकादेमी' पुरस्कार प्रदान किया गया। इसके प्रमुख पात्र सहाय, उसकी पत्नी राजश्री और सहाय की प्रेमिका नीलिमा है। राजश्री खुले विचारों की स्त्री है। वह सहाय की प्रेमिका से चिढ़ती नहीं बल्कि इसके विपरीत उससे खुश रहती है। उपन्यास के नायक सहाय को मंत्री पद दिया जा रहा है जिसे वे स्वीकार करना नहीं चाहते। सहाय के इस निर्णय से उसके सभी स्वजन और परिजन नाराज हो जाते हैं क्योंकि मंत्री बन जाने से सबके स्वार्थ पूर्ण हो सकेंगे। उसका जामाता उद्योगपति है। उसकी कई मिलें हैं और एक नयी मिल स्थापित भी होने वाली है। उसके खिलाफ जाँच चल रही है। मंत्री बनने पर जामाता को सारी सरकारी सुविधाएँ मिल जाएँगी। सहाय यह भली–भाँति जानते–समझते हैं और इसी कलंक से बचने के लिए वे पद के लिए इंकार करते हैं। वे किसी की बात नहीं सुनते। यहाँ तक कि पत्नी राजश्री और प्रेमिका नीलिमा का अनुरोध भी वे नहीं मानते।

अब जैनेन्द्र के इस पात्र में गाँठ पड़ जाती है, जो उसे मंत्री का पद लेने से रोकती है। नीलिमा इस गाँठ को खोलना चाहती है। सहाय मानता है कि राजनीति हमेशा से अनीति पर चलती आई है। उस अनीति को देख कर वह उसमें भाग लेना नहीं चाहता। राजश्री, नीलिमा और अन्य पारिवारिक जन इसे सहाय की खोखली आदर्शवादिता मानते है। फिर भी वह सहमत नहीं होता। उपन्यास में आगे चलकर उसकी बेटी अंजलि की दशा खराब होने लगती है। इतने सारे पारिवारिक एवं भावनात्मक दबाव के आगे अंततः सहाय झुक जाता है और न चाहते हुए भी मंत्री पद स्वीकार कर लेता है। अब शेष परिवार वाले प्रसन्न हैं, परन्तु इसका नायक सहाय ही प्रसन्न नहीं है। वह आत्म पीड़ा की स्थिति में आ जाता है। यही जीवन की गति है। बहुधा हम ऐसे काम करते जाते हैं, जो हम करना नहीं चाहते। उपन्यास का अंत इस घोषणा से होता है कि "मैं मिनिस्टर हो गया हूँ।" अब इसे सुखात्मक अंत कहें या दुखात्मक ? यह अनिर्णय की स्थिति में ही रहता है।

अनन्तर (1968)

यह उपन्यास सन् 1968 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार में प्रेम और परिवार के द्वंद्व और तनाव की कहानी कही गई है। उपन्यास में आदित्य, उसकी पत्नी चारु और प्रेमिका अपराजिता है। अपराजिता, आदित्य की पत्नी को कहती है कि वह आदित्य से प्रेम करती रही है। वह उसके साथ रही भी है तथा उसकी शारीरिक जरूरतों को भी पूरा किया है। परन्तु पत्नी उसकी चारु ही है और वही रहेगी भी।

देखा जाए तो इस परिवार के मुखिया प्रसाद उसकी पत्नी रामेश्वरी और जामाता आदित्य के जीवन पर उपन्यास की कहानी केंद्रित है। आदित्य संपन्न है और उसकी कई फ़ैक्टरियाँ हैं। वह हमेशा व्यस्त रहता है। उसकी प्रेमिका को लेकर पत्नी बेचैन रहती है और यह बेचैनी पूरे परिवार में छाई रहती है। इस बेचैनी को उसकी प्रेमिका ही दूर करती है। अपराजिता ऐसी पात्र है जो सभी का हित चाहती है। उसे दुनिया का अनुभव है। वह जानती है कि विरोध से प्रेम नहीं मिलता। प्रेम से ही प्रेम को पाया जा सकता है। अतः वह न तो आदित्य के मन में किसी तरह की ग्रंथि को आने देती है और न ही चारु के मन की पीड़ा को स्थायी रूप से रहने देती है। वह जब घर आती है तो रामेश्वरी के पैर छू कर उससे माफ़ी माँगती है और चारु को सब कुछ साफ़ साफ़ बता देती है। इससे चारु की आँख खुल जाती है। अपराजिता की स्पष्टवादिता

BHDC-109_4th proof.indd 129 8/6/2021 2:09:07 PM

से चारु और अपरा में मित्रता हो जाती है। इसे देख कर रामेश्वरी, प्रसाद और आदित्य सभी आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इस तरह इस उपन्यास का सुखद अंत होता है। इस उपन्यास में जैनेन्द्र कुमार की इस अवधारणा की अभिव्यक्ति है कि प्रेम होने से या करने से परिवार में विघटन नहीं होता, अपितु परिवार में स्नेह की वृद्धि होती है। इसलिए परिवार से बाहर किसी प्रेमिका की उपस्थिति सामाजिक दोष नहीं है। इस विषय को जैनेन्द्र कुमार ने अपने कई उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। 'अनन्तर' उपन्यास में यह भावना प्रमुखता से रेखांकित हुई है।

अनामस्वामी (1974)

यह उपन्यास सन् 1974 में प्रकाशित हुआ। इसमें "त्याग–पत्र" के आगे की कहानी कही गई है। इसके कुछ अंशों को जैनेन्द्र कुमार ने 1942 में लिख लिया था। इसे उन्होंने 1974 में पूरा करके प्रकाशित किया। समय के इतने अंतराल के बावजूद यह पता करना मुश्किल है कि इसका पुराना अंश कौन सा है और नया कौन सा है। इस उपन्यास में भी प्रेमी–प्रेमिका हैं जिनमें प्रेम है, परन्तु जिनका विवाह नहीं हो पाता। इस तरह एक कुंठा का जन्म होता है। उपन्यास में प्रोफेसर शंकर उपाध्याय वसुंधरा से प्रेम करतें है और उससे विवाह करने का स्वप्न देखते हैं। लेकिन वसुंधरा का विवाह उनसे न होकर कुमार से हो जाता है। वसुंधरा से शादी न हो पाने की पीड़ा घनीभूत होकर विनाशक रूप धारण कर लेती है। शादी न हो पाने के कारण जैसे वे कष्ट पा रहे है, वैसा ही कष्ट वसुंधरा को भी होना चाहिए, इसी बारे में शंकर उपाध्याय सोचते रहते हैं।

ऐसे में उन्हें मौका मिलता है। वसुंधरा संतान चाहती है लेकिन उसका पति इसमें सक्षम नहीं है। अतः पति कुमार, वसुंधरा को सलाह देते है कि वह शंकर उपाध्याय से सहवास करके संतान प्राप्त कर ले। शंकर को यह प्रस्ताव पसंद तो आता है परन्तु वसुंधरा को पीड़ा पहुँचाने के लिए वह यह प्रस्ताव ठुकरा देता है। उसके ऐसा करने का मकसद यह है कि वह अपनी पूर्व प्रेमिका को तड़पता हुआ देखना चाहता है। वह इस पीड़ा से पीड़ित होता रहता है और क्रोध में आकर एक दिन अपनी पत्नी की हत्या कर देता है। फिर भी उसका क्रोध शांत नहीं होता। आगे वह वसुंधरा के पति को अपना निशाना बनाता है। अपनी ईर्ष्या और घृणा के आवेश में एक दिन सुई लगाकर वसुंधरा के पति को अपाहिज बना देता है। इससे वसुंधरा बहुत परेशान रहती है। उसकी परेशानी शंकर उपाध्याय को अच्छी लगती है और उसे तुष्टि देती है। फिर भी उसे संतोष नहीं होता। एक दिन वह इंजेक्शन लगाकर वसुंधरा को भी मार देता है और फिर स्वयं भी अपने आप को समाप्त कर देता है। इस तरह अतृप्त प्रेम की यह कुंठा इस उपन्यास को दुखांत बना देती है, जहाँ दुखांत होने का कोई तर्क नहीं होता। शंकर यदि शुरूआत में ही सत्य को स्वीकार कर लेता, तो पात्रों का जीवन दुखांत नहीं होता। सब अपना–अपना जीवन जीते, परन्तु ऐसा इस उपन्यास में संभव नहीं हो पाता।

दशार्क (1985)

यह जैनेन्द्र कुमार का अंतिम उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1985 में होता है। इसकी नायिका सरस्वती नामक युवती है। उसका विवाह हो जाता है, लेकिन अपने पति से उसके संबंध तनावपूर्ण हो जाते हैं। वह उसे छोड़ कर वेश्या बन जाती है। अब उसका नाम सरस्वती नहीं, रंजना है। वह आम वेश्याओं की तरह अपने शरीर का सौदा नहीं करती। वह एक संस्था बनाती है। इस संस्था के द्वारा वह पुरुषों के मन में ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिशोध की आग जलाती रहती है। फिर उसे बुझाने के लिए ममता, स्नेह और प्यार देती है। जैनेन्द्र को लगता है कि अपने आत्मीय व्यवहार और सहज स्नेह से वह पुरुषों की पीड़ा का हरण कर सकती है। उन्हें मानवीय बनाने में सहायक हो सकती है। इस तरह वह समाज के लिए सहायक बन सकती है। रंजना के संपर्क में कई तरह के पुरुष आते हैं। वह सबसे स्नेह करती है। कई बार गुंडे–बदमाश भी

BHDC-109_4th proof.indd 130 8/6/2021 2:09:08 PM

आते हैं। वह उनसे भी कोई कटु व्यवहार या झगड़ा नहीं करती अपितु प्रेम से उन्हें सँभालती है। रंजना वेश्याओं की सभा में भी उपदेश देने जाती है। उसका कहना है कि वे नफरत करना नहीं, प्यार करना सीखें। उनके मन में किसी तरह का अपराध बोध नहीं होना चाहिए। इसके माध्यम से जैनेन्द्र कुमार मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का उपदेश देते हैं। रंजना कहती है कि जो व्यक्ति उनके पास (प्रेम के लिए) आता है, वह भटका हुआ व्यक्ति है। दुनिया से उसे कई कटु अनुभव मिले हैं। वह पीड़ित है। उसे सांत्वना की आवश्यकता है, जो उसे परिवार में नहीं मिल रहा है। हम उसके घाव पर मरहम लगा सकती हैं। अब यह कितना आदर्शवादी है और कितना व्यवहार जगत में संभव रहा है इस पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है परन्तु जैनेन्द्र अपनी दृष्टि से इस वर्ग की समस्याओं को देखते हैं। हालाँकि यह भी इस वर्ग की स्त्रियाँ पुनरोद्धार की तरह का एक आदर्शवादी प्रयास है। यहाँ वे मनोचिकित्सक की तरह व्यवहार करती हैं और जन सेवा का अवसर खोज लेती हैं। अंततः उपन्यास में अब वे अपने जीवन से संतुष्ट हैं और गर्व से रहती हैं।

बोध प्रश्न–2

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

   क) जैनेन्द्र का अंतिम उपन्यास कौन सा है ?

   .....

   ख) जैनेन्द्र कुमार को किस उपन्यास पर 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार प्रदान किया गया ?

   .....

   ग) जयवर्द्धन किस शैली में रचित है ?

   .....

   .....

   घ) डॉ. असरानी की दो चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।

   .....

   .....

   ङ) मृणाल और प्रमोद किस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं ?

   .....

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित शब्दों द्वारा कीजिए।

   क) परख सन् ..... में प्रकाशित हुआ।

   ख) 'अनामस्वामी' में ..... से आगे की कहानी कही गई है।

   ग) ..... उपन्यास की कथा जयंत के इर्द–गिर्द घूमती है।

   घ) सहाय और राजश्री ..... उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं।

6.6. सारांश

जैनेन्द्र कुमार हिंदी के महत्वपूर्ण कथाकार और निबंध लेखक हैं। उपन्यासकार के रूप में उनका नाम अज्ञेय के साथ लिया जाता है। वे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार माने जाते हैं। इस अर्थ में वे प्रेमचंद की परंपरा के लेखक नहीं है। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के कौड़ियागंज गाँव में 2 जनवरी, 1905 में और मृत्यु 24 दिसम्बर 1988 में हुई। इनका

BHDC-109_4th proof.indd 131 8/6/2021 2:09:08 PM

बचपन का नाम आनंदीलाल था। साहित्य की दुनिया में इनकी पहचान जैनेन्द्र कुमार के नाम से है। जैनेन्द्र को विधिवत विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त नहीं हुई। असहयोग आंदोलन के प्रभाव से उन्होंने अपनी शिक्षा को बीच में ही छोड़ दिया। उनके साहित्यिक योगदान को ध्यान में रखते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय और आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ने डी.लिट. की मानद उपाधि प्रदान की। इनको कई संस्थाओं से पुरस्कार प्राप्त हुए। जिनमें साहित्य अकादमी पुरस्कार शामिल है। भारत सरकार ने इन्हें पद्म भूषण की उपाधि प्रदान की।

उन्होंने बारह उपन्यासों और कई कहानियों की रचना की। उनकी संपूर्ण कहानियाँ सात भागों में संगृहीत की गई हैं। इसके अलावा इनका वैचारिक गद्य भी महत्वपूर्ण है। जिनमें प्रस्तुत प्रश्न, साहित्य का श्रेय और प्रेम, काम, प्रेम और परिवार प्रमुख है। उन्होंने प्रेमचंद के समय में ही उपन्यास लिखना प्रारम्भ कर दिया था। 1929 में उनका पहला उपन्यास 'परख' प्रकाशित हुआ। इसके अलावा सुनीता, त्याग–पत्र, कल्याणी आदि उपन्यासों की रचना स्वधीनता आंदोलन के दौर में हो गई थी। आजादी के बाद जैनेन्द्र ने सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन, मुक्तिबोध, अनन्तर, दशार्क आदि उपन्यासों की रचना की।

उनके उपन्यासों में व्यक्ति का जीवन महत्वपूर्ण है। समाज का नहीं अपितु व्यक्ति का चित्रण करना, उसके मनोभावों का चित्रण करना और उसके मनोविज्ञान का चित्रण करना जैनेन्द्र कुमार अधिक पसंद करते हैं। उनके उपन्यासों पर गाँधीवाद और जैन धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनके उपन्यास आकार में छोटे होते हैं। प्रेमचंद के साथ प्रगाढ़ संबंध होते हुए भी जैनेन्द्र कुमार के लेखन पर प्रेमचंद का प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता।

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क) कौड़िया गंज, ख) 1908, ग) बारह, घ) सात
2. क) उत्तर के लिए इकाई का भाग 6.2 देखिए।
   ख) उत्तर के लिए इकाई का भाग 6.4 देखिए।
3. क) दर्शाक (1986), ख) मुक्तिबोध, ग) डायरी शैली में,
   घ) लोभी तथा पारम्परिक भारतीय मानसिकता का पुरुष,
   ङ) त्याग–पत्र।
4. क) 1929, ख) त्याग–पत्र, ग) व्यतीत, घ) मुक्तिबोध।

BHDC-109_4th proof.indd 132 8/6/2021 2:09:08 PM

इकाई 7 'त्याग–पत्र' की अंतर्वस्तु और संरचना–शिल्प

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 'त्याग–पत्र' का परिचय एवं संदर्भ

7.3 'त्याग–पत्र' का कथासार

7.4 'त्याग–पत्र' के कथानक की विशेषताएँ

7.5 चरित्र चित्रण

7.6 परिवेश

7.7 संरचना–शिल्प

7.7.1 शैली

7.7.2 संवाद

7.7.3 भाषा

7.8 जीवन दृष्टि

7.9 संदर्भ सहित व्याख्या

7.10 सारांश

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपः

- 'त्याग–पत्र' उपन्यास का परिचय एवं संदर्भ जान सकेंगे ;
- 'त्याग–पत्र' की संक्षिप्त कथा और कथानक की विशेषताएँ समझ सकेंगे;
- 'त्याग–पत्र' के परिवेश की जानकारी दे सकेंगे;
- 'त्याग–पत्र' के संरचना शिल्प की विशेषता बता सकेंगे; और
- 'त्याग–पत्र' के उद्देश्य को समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

जैनेंद्र कुमार हिंदी के प्रतिष्ठित कथाकार है। उन्होंने अनेक उपन्यासों की रचना की है। इनमें से 'त्याग–पत्र' उनका सर्वाधिक चर्चित और प्रंशसित सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास का कथा वाचक प्रमोद है। वह अपनी बुआ मृणाल की कहानी कहता है। मृणाल के माध्यम से हम नारी जीवन की दर्द भरी दास्तान को पढ़ समझ सकते हैं। इसके साथ ही हम जैनेंद्र कुमार के जीवन–दर्शन को भी पढ़–समझ सकते हैं। इस इकाई में हम 'त्याग–पत्र' की विषयवस्तु और उसकी भाषा आदि पर विचार करेंगे। इकाई में उपन्यास के एक अंश की व्याख्या भी उदाहरण स्वरूप दी गई है।

7.2 'त्याग–पत्र' का परिचय एवं संदर्भ

यह हिंदी ग्रंथ रत्नाकर का 94वां ग्रंथ है। इसके शीर्षक में लिखा हुआ है–

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

'त्याग–पत्र'

(मौलिक सामाजिक उपन्यास)

पहली बार यह सन् 1937 में प्रकाशित हुआ है। उपन्यास का प्रारंभ इस वक्तव्य से होता है–

''सर एम. दयाल जो इस प्रान्त के चीफ जज थे और जजी त्यागकर इधर कई वर्षों से हरिद्वार में विरक्त जीवन बिता रहे थे, उनके स्वर्गवास का समाचार दो महीने हुए पत्रों में छपा था। पीछे उनके कागजों में उनके हस्ताक्षर के साथ एक पांडुलिपि पाई गई जिसका संक्षिप्त सार इतस्ततः पत्रों में छप चुका है। उसे एक ''कहानी'' ही कहिए। मूल लेख अंग्रेजी में है। इसी का हिंदी उल्था यहाँ दिया जाता है।

कहानी में स्थानों और व्यक्तियों के नाम और कुछ ऐसे ही ऐहिक विवरण अनिवार्य न होने के कारण ''बदल या कम कर दिया गए है।''

इसके बाद उपन्यास प्रारंभ होता है। यहाँ सर एम. दयाल के स्थान पर प्रमोद पात्र बनकर आया है। इसी प्रमोद की बुआ मृणाल है। मृणाल के मरने की खबर से उपन्यास का प्रारम्भ होता है। आगे विस्तार से मृणाल के जीवन की कहानी चलती है। उपन्यास का अंत भी मृणाल के मरने से होता है। बुआ के मरने के बाद बुआ को संबोधित करते हुए प्रमोद कहता है – ''बुआ, तुम मर गई। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत का आरंभ–समारंभ ही छोड़ दूंगा। औरों के लिए रहना तो शायद नये सिरे से मुझ से सीखा न जाय। आदतें पक गई हैं। पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ।

भगवन, तुम मेरी बात सुनते हो। वैसे चाहे न भी तो, पर वचन तोडूँ तो मुझे नरक अवश्य ही देना। (ह.) एम. दयाल ता. 3–4

पुनश्च – इसी के साथ सही करता हूँ कि जजी से अपना त्याग–पत्र मैंने दाखिल कर दिया है। एम.डी.ता. 4–4

इस तरह यह एम. दयाल उपन्यास के प्रारंभ में आते हैं और फिर अन्त में आते हैं। उपन्यास में 'त्याग–पत्र' का अर्थ हुआ जज एम. दयाल या प्रमोद द्वारा जज के पद से दिया त्याग–पत्र। स्पष्ट है कि मृणाल के जीवन से त्याग–पत्र का अर्थ इस उपन्यास में नहीं आता क्योंकि क्योंकि मृणाल की मृत्यु होती है, स्वेच्छा से। वह मृत्यु का वरण नहीं करती। वह ऐसे जीवन का वरण करती है जिसमें उसे अपार कष्ट होता है, परंतु वह जीवन से त्याग–पत्र की श्रेणी में नहीं आता। तब मन में यह प्रश्न भी आता है कि यह उपन्यास प्रमोद का है या मृणाल का! उपन्यास में कौन महत्वपूर्ण है। वर्णन की दृष्टि से तो मृणाल महत्वपूर्ण है, परंतु उपन्यास के ढाँचे में प्रमोद भी एक प्रमुख पात्र है।

उपन्यास का यह परिवार समृद्ध परिवार है। प्रमोद के पिता दो भाई और तीन बहनें थीं। भाई छोटा था जो घर से अलग होकर बरमा चला गया। दो बड़ी बहनें थी। दोनों प्रसव के दौरान मर गईं। इनमें से एक बुआ बची, जो सबसे छोटी थी। प्रमोद के पिता बुआ को बहुत प्यार करते थे और माँ उस पर कठोर नियंत्रण रखती थीं। वे उसे 'आर्य गृहिणी' बनाकर रखना चाहती थीं। बुआ शहर के बड़े स्कूल में पढ़ती थी और बग्गी में बैठकर स्कूल जाती थी। इस पृष्ठभूमि से 'त्याग–पत्र' उपन्यास का प्रारंभ होता है।

उपन्यास में मृणाल और उसका भतीजा प्रमोद है जो उम्र में काफी छोटा है। दोनों का रिश्ता अत्यंत आत्मीय है। चूँकि कथा भतीजा कहता है, इसलिए इसमें वही बातें आती हैं, जहाँ भतीजा उपस्थित रहता है या उसे बताया गया है। प्रमोद की अनुपस्थिति में घटित घटनाओं की केवल सूचना दे दी जाती है ताकि कथा के ग्रहण में बाधा उत्पन्न न हो। उम्र में काफी छोटा होने के कारण भतीजे के सामने जो बातें आती हैं वे बिम्ब

BHDC-109_4th proof.indd 134 8/6/2021 2:09:08 PM

रूप में आती हैं। उनका अर्थ–ग्रहण भतीजा नहीं कर पाता। पाठक अलबत्ता उनका अर्थ–ग्रहण कर लेता है। वर्णन करने के क्रम में प्रमोद बड़ा हो गया है। अतः तब वह उन सभी बातों को समझने लगा है जिनका अर्थ–ग्रहण प्रमोद पहले नहीं कर पाया था। बुआ के मरने के साथ ही प्रमोद के मन में यह कसक रहती है कि क्या अंत समय में बुआ ने मुझे याद किया? इस कसक से दोनों के आत्मीय रिश्ते का एहसास पाठक को भी होता है। उपन्यास को पढ़ते समय या इसका अध्ययन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कथा वाचक (प्रमोद) और कथा विषय (मृणाल बुआ) का रिश्ता कितना आत्मीय और सघन है साथ ही, उसमें कोई औपचारिकता भी नहीं है।

7.3 'त्याग–पत्र' का कथा सार

उपन्यास का प्रारंभ मृणाल के स्कूल दिनों से होता है, जब वह अत्यन्त शरारती और चुलबुली लड़की हुआ करती थी और जिसकी शीला नामक सहेली थी। शीला और भी नटखट है। एक बार शीला गणित के शिक्षक की कुर्सी में कीलें डाल देती है। शिक्षक नाराज होते हैं। वे पूरी कक्षा को दण्ड देने के लिए तैयार होते हैं और पूछते हैं कि यह किसने किया। मृणाल को पता है कि यह कार्य शीला ने किया है। तब भी वह कक्षा में खड़ी होकर यह स्वीकार कर लेती है कि कुर्सी में कीलें डालने का कार्य उसने किया है। इस पर मृणाल की डण्डे से पिटाई होती है, जिसे वह शान्ति से स्वीकार कर लेती है। आत्म पीड़ा की यह पहली तस्वीर है। शीला के घर मृणाल का आना–जाना होता है। यहाँ शीला के भाई से उसके संबंध हो जाते हैं। जब प्रमोद की माँ को इन संबंधों की जानकारी होती है, तब माँ मृणाल को कमरे में बंद करके डंडे से खूब पिटाई करती है। पिटाई के कष्ट से एक बार तो मृणाल चिल्लाती भी है। बाद में इस मार को भी चुपचाप सहन कर लेती है।

इस घटना से आहत प्रमोद के माता–पिता, जल्दी–जल्दी मृणाल का विवाह कर देते हैं। उसकी किशोरावस्था अभी चल ही रही है। न समझ विकसित हुई न भावनाएँ। मृणाल चुपचाप इस स्थिति को स्वीकार कर लेती है। कुछ दिन बाद वह वापिस घर आती है। वह माँ बनने वाली है। ससुराल में वह खुश नहीं है। वह वापिस ससुराल जाना नहीं चाहती, क्योंकि उसका प्रौढ़ पति उसे बेंत से पीटता है। अंततः उसे ससुराल जाना ही पड़ता है। दुबारा ससुराल जाने पर कुछ दिन बाद पति उसे घर से निकाल देता है। उसकी नवजात बच्ची की भी मृत्यु हो जाती है।

इसके बाद वह एक कोयले वाले के घर में रहने लगती है। मृणाल उसके बच्चे की माँ बनने वाली है। प्रमोद उससे मिलने जाता है, तब वह अपनी स्थिति का बयान करती है और यह आंशका जाहिर करती है कि अब थोड़े–दिनों बाद यह आदमी भी मुझे छोड़कर वापिस अपने परिवार के पास जाने वाला है। कुछ समय पश्चात् मृणाल को मार–पीट कर निराधार छोड़कर वह कोयले वाला भी चला जाता है। अस्पताल में वह एक बच्ची को जन्म देती है। अस्पताल मिशन का है। अस्पताल वाले उसे यह प्रस्ताव देते हैं कि वह इस बच्ची को मिशन को सौंप दे। मिशन उसे पाल–पोस कर, पढ़ा–लिखाकर बड़ा कर देगा। वे मृणाल को भी ईसाई धर्म स्वीकार करने की सलाह देते हैं। उसे नर्स की नौकरी देने का प्रलोभन भी देते हैं। मृणाल उनके इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है और बिना किसी सहारे के वहाँ से चली जाती है।

इस बीच उपन्यास में नाटकीय मोड़ आता है। प्रमोद के विवाह की चर्चा चलती है। वह लड़की देखने के लिये जिस घर में जाता है, उस घर में नौकरानी के रूप में उसे मृणाल मिलती है। मृणाल का जीवन अब ढर्रे पर आ गया है हालाँकि उसकी बच्ची की फिर मौत हो गई है। जब लड़की वालों को पता चलता है कि मृणाल प्रमोद की बुआ है, तो वे यह रिश्ता करने से मना कर देते हैं और मृणाल को भी नौकरी से निकाल

BHDC-109_4th proof.indd 135 8/6/2021 2:09:08 PM

देते हैं। अब वह कुत्सित समाज के बीच चली जाती है जहाँ उसका जीवन लगभग नारकीय जीवन बन जाता है। प्रमोद फिर प्रयास करता है कि मृणाल उसके साथ उसके घर चली चले। कोयले वाले के यहाँ मिलने पर भी प्रमोद यह प्रस्ताव रखता है परन्तु मृणाल कहती है कि वह घर तुम्हारा नहीं है। तुम्हारी माँ का है। यद्यपि अब माँ की मृत्यु हो चुकी है। प्रमोद बड़ा वकील बन गया है। तब भी मृणाल उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। वह प्रमोद को कहती है कि वह अपने रुपये इस बस्ती के लोगों पर खर्च करे। लेकिन प्रमोद, बुआ की यह इच्छा पूरी नहीं कर पाता। समय बीतता जाता है। प्रमोद वकील से जज बन जाता है और एक दिन पता चलता है कि बुआ का देहांत हो गया। प्रमोद के मन में भी पश्चाताप जागृत होता है और वह जजी से त्यागपत्र दे देता है। यहाँ आकर उपन्यास समाप्त हो जाता है। इस कथा के भीतर समाज, चिंतन, पात्रों का जीवन, उनका व्यक्तित्व सब चित्रित होते रहते हैं।

7.4 'त्याग–पत्र' के कथानक की विशेषताएँ

'त्याग–पत्र' के कथानक का ताना–बाना प्रमोद के वर्णन से आता है। वही मृणाल की कहानी कहता है। प्रमोद के इस कथ्य के दो भाग हैं – एक, तो जिन बातों, घटनाओं और प्रसंगों को प्रमोद ने स्वयं देखा है। अर्थात् वह उन घटनाओं का साक्षी है। दूसरे कुछ घटनाओं के बारे में मृणाल उसे बताती है। वे सब प्रसंग प्रमोद बिना किसी अतिरिक्त जिज्ञासा के, पाठकों को सुना देता है। कुछ बातें अन्य पात्र मृणाल के बारे में बताते हैं। यह हिस्सा सूचनात्मक है एक अनुभव या घटना को दूसरे अनुभव या घटना से जोड़ने के काम आता है, जिसे कथावाचक भी सूचना के स्तर पर ही सुनता है। जहाँ पर प्रमोद स्वयं उपस्थित रहता है या जहाँ मृणाल उसे बताती है–उन प्रसंगों का वर्णन बहुत जीवंत है। मृणाल की कहानी का मर्म इन प्रसंगों में ही मिलता है। शेष तो जानकारियाँ है।

स्कूल के दिनों में मृणाल घर आकर स्कूल की शरारतें प्रमोद को सुनाया करती थी। उसी में शीला का प्रकरण भी है जिसमें शिक्षक की कुर्सी में कीलें शीला डालती है और मृणाल कह देती है कि 'यह कसूर मेरा है'। इसके बाद मास्टर जी जब उसे बेंत से मारते हैं तो न रोती है न चिल्लाती है। वह तो और भी मार खाने के लिए तैयार है। इस आत्म पीड़ा को बर्दाश्त करने का नैतिक साहस मृणाल के चरित्र की अपनी विशेषता है। यहाँ पर यह मामूली शरारत के रूप में आता है, परन्तु आगे चलकर ऐसी घटनाएँ उसके जीवन का अंग बनती जाती हैं। इसके बाद उपन्यास में दो बार बेंत से मार खाने का जिक्र आता है। एक बार प्रमोद की माँ द्वारा और दूसरी बार उसके पति द्वारा। पति द्वारा बेंत से पीटे जाने का साक्षी प्रमोद नहीं है। यह घटना उसे बुआ सुनाती है। शीला के भाई से सम्बन्ध की घटना की जानकारी मिलने पर प्रमोद की माँ मृणाल को पीटती है। प्रमोद ने वर्णन किया है कि ''बेंत की पहली चोट पर तो एक चीख मुझको सुनाई दी थी, उसके बाद रोने–कल्पने की आवाज मुझे नहीं आई।' बेत तड़ातड़ पड़ रहे थे।'' पिटाई के बाद के दृश्य का वर्णन करते हुए प्रमोद ने लिखा है – ''बुआ औंधी पड़ी हुई है। उनकी साड़ी इधर–उधर हो गई है। जगह–जगह नील उभर आए हैं। कहीं–कहीं लहू भी छलक आया है। बुआ गुम–सुम पड़ी है न रोती है न सुबकती है। बाल बिखरे हैं और धरती पर पड़ी दोनों बाहों पर माथा टिका है।''

इससे पहले बुआ कहती है कि 'मैं बुआ होना नहीं चाहती। मैं चिड़िया होना चाहती हूँ।' बुआ प्रमोद की माँ से वैसे भी कोई रिश्ता नहीं मानती। उसकी असंवदेनशीलता को ध्यान में रखते हुए उसे हमेशा 'तेरी माँ' (प्रमोद की) सम्बोधन से पुकारती है। हालाँकि बुआ ने चुपचाप मार खा ली थी। कोई प्रतिकार नहीं किया था। परन्तु ''वह दिन था फिर बुआ की हँसी मैंने नहीं देखी''। वैसे तो मृणाल अपनी पीड़ा का कहीं वर्णन नहीं

BHDC-109_4th proof.indd 136 8/6/2021 2:09:08 PM

करती। एक बार वह ससुराल से वापिस आती है और फिर ससुराल जाना नहीं चाहती। तब कारण पूछने पर वह कहती है कि ''बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता। न यहाँ अच्छा लगता है न वहाँ अच्छा लगता है।'' ससुराल में शारीरिक प्रताड़ना का यह एक प्रमाण है। अन्यथा इस तरह की जानकारी उसके किसी अन्य कथन से नहीं मिलती और न ही लेखक ने कोई ऐसा संकेत उपन्यास में किया है।

'त्याग–पत्र' के कथानक को देखकर कई बार संदेह होता है कि लेखक ने मृणाल के जीवन की सीधी रेखा खींच रखी है। इसमें उनका उद्देश्य है कि मृणाल के जीवन को पीड़ा में रखा जाए। मृणाल खूबसूरत कन्या है। चुलबुली है। उसे जीवन का ज्ञान नहीं है। जो वैसे भी किशोरावस्था में बहुत मुश्किल से ही किसी के पास होता है। ऐसी कन्या को प्रेम का शिकार आसानी से बनाया जा सकता हैं। शीला के घर भेजकर लेखक ने मृणाल के लिए यह अवसर उपलब्ध करवा दिया। अब वह माँ बनने वाली है या बन सकती है। प्रमोद की अनुभवी माँ को इसका एहसास है। इसका समाधान उसे यही सूझा कि जल्दी–जल्दी इसका विवाह कर दो। यहाँ उपयुक्त वर के चयन का अवकाश नहीं है। अतः जो मिल जाए उससे ही विवाह कर देना आवश्यक है। मृणाल से बड़ी उम्र के व्यक्ति के साथ जैनेन्द्र ने उसका विवाह करवा दिया। बेमेल विवाह से कुछ तो समस्याएँ होनी ही थीं। मृणाल के विवाह पूर्व शारीरिक संबंधों की जानकारी जब उसके पति को हुई तब इसी आधार पर पति ने उसका परित्याग कर दिया। एक बार नादानी से रिश्ता हो गया तो उसे घर से निकालने के अतिरिक्त कोई और विकल्प तो नहीं था। पति उसे पीहर में भी पहुँचा सकता था, नहीं पहुँचाया और इस निर्दय समाज में मृणाल को अकेला छोड़ दिया। जैनेन्द्र कुमार को मृणाल के जीवन को पीड़ा में रखना था, ताकि उनके दर्शन को उचित ठहराया जा सके। अपने दर्शन को उचित ठहराने के लिए जैनेन्द्र ने ऐसी परिस्थिति निर्मित की।

यद्यपि मृणाल के जीवन में अनेक अवसर आते हैं कि वह अपने जीवन को थोड़ा सुखी बना सके, परन्तु लेखक ऐसा होने नहीं देता। वह कोयले वाले के साथ पूरा जीवन गुजार सकती थी, लेखक ने नहीं गुजारने दिया। कोयले वाले ने जब मृणाल को निकाला तब एक अवसर उसके पास आया था कि वह मिशन में चली जाए, ईसाई मत स्वीकार कर ले, नहीं किया। यहाँ तक फिर भी गनीमत है। इसके बाद वह एक परिवार मे घरेलू नौकरानी बनती है। उसी घर–परिवार में जैनेन्द्र कुमार प्रमोद के विवाह का आयोजन कर देते हैं। इसका परिणाम यही होना था कि उसे उस घर से भी निकलना पड़ा। अब इतने सारे संयोग लेखक ने मृणाल के जीवन में ही क्यों डाले! सारे संयोग मृणाल के जीवन को पीड़ामय बनाने के लिए ही किए गए होंगे। ये सब कथानक की अनिवार्यता का ही हिस्सा नहीं लगते, लेखक की योजना का हिस्सा भी लगते हैं।

'त्याग–पत्र' उपन्यास को जैनेन्द्र ने डायरी और संस्मरण की शैली में लिखा है। उपन्यास में कथा मृणाल की है, लेकिन उसे लेखक नहीं कहता, न ही मृणाल कहती है वरन् प्रमोद इस कथा का वाचक है। अब जितना प्रमोद ने देखा, समझा, सुना, प्रमोद उसी का तो वर्णन कर सकता है। इस शैली के कारण कथानक की कई मूल बातें छूट जाती हैं। शीला का भाई अच्छा व्यक्ति है। प्रमोद को भी उसका व्यक्तित्व अच्छा लगा था। लेकिन मृणाल और शीला के भाई का रिश्ता कैसे हुआ ; आगे क्या–क्या हुआ? इस संदर्भ में पाठक को कुछ पता नहीं चलता। पाठक उस अँधेरे कोने से अनजान रहता है। इधर मृणाल अभी प्रेम में है और खुश है। इस प्रेम के कारण मृणाल की पिटाई होती है और अब वह दुःखी है। मृणाल के इस प्रेम के कारण क्रोधित और आहत प्रमोद की माँ की बेचैनी, उनकी मानसिकता का वर्णन भी उपन्यास में नहीं किया गया है। माँ के सामने एक समाजिक संकट है। मृणाल का भाई मृणाल से प्रेम तो करता है, परंतु वह भी इस अनैतिक प्रेम–व्यापार का समर्थन नहीं कर सकता। पत्नी द्वारा की गई पिटाई

BHDC-109_4th proof.indd 137 8/6/2021 2:09:08 PM

से वह भी सहमत है और चुप रहकर उसका समर्थन करता है। वह मजबूर, अच्छा आदमी बनकर खड़ा रहता है। इस तरह कथा का अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा अकथनीय क्षेत्र में चला जाता है।

लेखक का ध्यान सिर्फ मृणाल पर है। लेखक मृणाल के संदर्भ में उपयुक्त जानकारियाँ देता चलता है, परन्तु पाठक प्रमोद को भी ठीक से जानना–समझना–पढ़ना चाहता है। मृणाल के पति को भी भली–भाँति जानना चाहता है। वास्तव में उपन्यास का पाठक उपन्यास के सभी चरित्रों को जानना–समझना और पढ़ना चाहता है। लेकिन उपन्यास की वर्णन शैली इसकी अनुमति नहीं देती। ये सारे पात्र मृणाल के जीवन के लिये नरक का दरवाजा खोलने का ही काम करते हैं।

बोध प्रश्न–1

1. निम्नलिखित कथनों में से सही पर (✓) तथा गलत पर (✗) का निशान लगाइए :

   क) मृणाल बग्गी में बैठकर स्कूल जाया करती थी। सही / गलत

   ख) मृणाल ने अपनी नवजात बच्ची को मिशन को सौंप दिया। सही / गलत

   ग) उपन्यास का अंत होते–होते मृणाल प्रमोद के साथ उसके घर चली गई। सही / गलत

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

   क) 'त्याग–पत्र' उपन्यास किस शैली में लिखा गया था ?

   .....

   .....

   .....

   ख) राजनंदिनी का विवाह प्रमोद से क्यों नहीं हो पाया ?

   .....

   .....

   .....

   ग) मृणाल को बेंत से किसने मारा था ?

   .....

   .....

   .....

3. उचित विकल्प द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   1. मृणाल अपनी भाभी को ..... कहकर संबोधित करती थी।
      (भाभी / प्रमोद की माँ)

   2. प्रमोद की माँ मृणाल को ..... की तरह बनाना चाहती थी।
      (आधुनिक लड़की / आर्यगृहिणी)

   3. मृणाल अपने मैके में ..... को सबसे अधिक प्यार करती थी।
      (प्रमोद को / अपने भाई को)

BHDC-109_4th proof.indd 138 8/6/2021 2:09:08 PM

7.5 चरित्र–चित्रण

'त्याग–पत्र' का उद्देश्य मृणाल के जीवन को जानना–समझना है और उसके जीवन में लिए गए निर्णय किन स्थितियों–परिस्थितियों की देन थे, इसका अंकन करना है। उसका जज भतीजा प्रमोद यह प्रयास करता है। उसने अपने बारे में, तथा अन्य पात्रों के संदर्भ में वर्णन किया है। इस उपन्यास में पात्र बदलते नहीं। उपन्यास के भीतर उनका विकास नहीं होता। पात्र जिस मानसिकता के साथ इस उपन्यास में आते हैं, वैसे ही वे अंत तक बने रहते हैं। पात्रों की यह विशेषता सहायक पात्रों के साथ–साथ प्रमुख पात्रों पर भी लागू होती है। सहायक पात्र तो अन्य उपन्यासकारों में भी यथावत बने रहते हैं, परन्तु नायक–नायिका विकसित हो जाते हैं। 'त्याग–पत्र' में ऐसा कुछ नहीं होता। आदर्शवादी भावुक प्रमोद उपन्यास के अन्त तक वैसा ही बना रहता है। मृणाल का पति, पिता, माँ और कोयले वाले की मानसिकता में ज़रा भी परिवर्तन दिखाई नहीं देता। यहाँ तक कि मृणाल के चरित्र में भी कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं होता। उसका जीवन बदलता है, परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, विकसित होती हैं, परन्तु मृणाल अन्त तक वैसी ही बनी रहती है। शायद उसको परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको बदलना नहीं आता। इसीलिए वह ट्रेजिक चरित्र बनी रहती है। यदि बदलना आता तो वह भी प्रमोद की तरह सफल चरित्र बन सकती थी। 'त्याग–पत्र' के विशिष्ट चरित्रों पर इकाई 8 में विस्तार से विचार किया जाएगा।

7.6 परिवेश

किसी भी उपन्यास की कथा का चित्रण विशेष परिवेश में होता है। उसी परिवेश में घटनाएँ घटित होती हैं, तथा पात्रों का चरित्र–चित्रण होता है। इस परिवेश को पात्रों और कथा की संगति में होना चाहिए, तभी कोई उपन्यास अपना अभिप्रेत संप्रेषित कर पाता है। उदाहरण के लिए भारतीय समाज का चित्रण करने के लिए किसानों का परिवेश ग्रामीण जीवन से जुड़ा हुआ होना चाहिए। शिक्षित पात्र नगरों में निवास करते हैं तथा धनी वर्ग साइकिल से नहीं चलते अपितु उनके पास मोटरकार आदि वाहन की व्यवस्था होती है। ये सारे बिन्दु उपन्यास के परिवेश का अंग होते हैं। इसका यथार्थ चित्रण उपन्यास की कथा को विश्वसनीय बनाता है, अन्यथा उपन्यास की कथा अविश्वसनीय लगने लगती है और पाठक रचना को पढ़ने के बीच में छोड़कर चला जाता है। कथा और पात्र को विश्वसनीयता प्रदान करने के उपरांत परिवेश अपना पृथक अस्तित्व खो देता है तथा उसकी तरफ पाठक का ध्यान नहीं जाता।

'त्याग–पत्र' का परिवेश

'त्याग–पत्र' के प्रमुख पात्र मृणाल और प्रमोद हैं। इनका परिवेश संपन्न मध्यवर्गीय परिवार है। ''प्रमोद के पिता प्रतिष्ठा वाले थे और माता अत्यंत कुशल गृहिणी थी। जैसी कुशल थी, वैसी कोमल होती तो .....?'' यहाँ से उपन्यास का पारिवारिक–सामाजिक परिवेश प्रकट होता है। यह परिवार धनी भले ही न हो, परन्तु अच्छा खाता–पीता परिवार था। मृणाल शहर के बड़े स्कूल में बग्गी में पढ़ने जाती थी। उसकी प्रिय सहेली शीला है। शीला भी सुखी मध्यवर्गीय परिवार से संबद्ध है। शीला के घर मृणाल का आना–जाना है। शीला के भाई से उसका संबंध होता है। वह भी शिक्षित नौजवान था। घर की इज्जत बचाने हेतु आनन–फानन में मृणाल का विवाह कर दिया जाता है। वह अपने ससुराल में जाती है। ससुराल भी अच्छा मध्यवर्गीय संपन्न परिवार था। उसके पति के पास कार थी, जो उस युग को ध्यान में रखते हुए संपन्न परिवार का लक्षण था। ससुराल में उसको और चाहे जो कठिनाइयाँ हों, परन्तु आर्थिक परेशानी कुछ भी न थी।

BHDC-109_4th proof.indd 139 8/6/2021 2:09:08 PM

पति के घर से निकलकर जब मृणाल कोयले वाले के साथ रहने लगती है, तब उसका सामाजिक–आर्थिक परिवेश बदल जाता है। वर्गीय दृष्टि से यह दूसरी दुनिया थी। यहाँ उसको आर्थिक अभाव में रहना पड़ा। इस घर का वर्णन करते हुए प्रमोद कहता है, "कहाँ बुआ, कहाँ इस जगह थी गंदगी? वहाँ नीचे दर्जे के लोग रहते थे। भीतर गली में गहरे जाकर बुआ की कोठरी थी। बनिया बाहर एक दूकान लेकर वहाँ दिन में कोयले का व्यवसाय करता था।"

"इधर बुआ को देखा तो देह दुबली थी, मुख पीला था। गर्भवती थी। एक धोती में अपनी सब देह ढाँके बैठी थी। मुँह पर क्या लाज की छाया आ गई थी। कोठरी बारह फीट वर्ग से बड़ी न होगी। बाहर थोड़ी खुली जगह थी, जहाँ धोती, अँगोछे सूख रहे थे।"

उपन्यास ज्यों–ज्यों विकसित होता जाता है, मृणाल के जीवन के साथ उसका परिवेश भी बदलता जाता है। मृणाल का चरित्र भले ही अपरिवर्तनशील रहा हो, परन्तु उसके जीवन का वातावरण बदलता जाता था और मृणाल हर परिस्थिति में अपने आपको ढाल लेती थी। मृणाल के जीवन का अंतिम परिवेश कुछ ऐसा था– "जहाँ नगर की सड़ाँद रहती हैं, वहाँ रहती थी। अधेड़ अवस्था की वेश्याएँ, बेकार मजदूर, पेशेवर भिखमंगे, कानून की आँख और चंगुल से बचकर छिपे–उधड़े काम करने वाले उच्च लोगों के रहने की वह जगह थी।"

इस तरह भद्र मध्यवर्गीय समाज से समाज की तलछट तक मृणाल का जीवन चलता है और लेखक विस्तार और बारीकी से इन स्थितियों–परिस्थितियों का वर्णन करता चलता है। मृणाल भद्र मध्यवर्गीय जीवन से इस 'सड़ाँद' में रहना स्वीकार करती है और अपने भतीजे प्रमोद के बार–बार कहने पर भी उसके साथ न जाने का निर्णय लेती है।

7.7 संरचना और शिल्प

'त्याग–पत्र', डायरी और संप्रेषण की शैली में लिखा हुआ उपन्यास है। हम प्रेमचंद के उपन्यास से तुलना करके 'त्याग–पत्र' की संरचना और शैली को समझ सकते हैं। प्रेमचंद, लेखक के रूप में अपने उपन्यासों की कथा कहते हैं। वे पूरे समय उपन्यास में उपस्थित रहते हैं। कथा चरित्र और घटनाओं का वे स्वयं वर्णन करते जाते हैं और उसका अर्थ भी करते जाते हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में लेखक प्रत्येक स्थिति पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करने के लिए उपस्थित रहता है। उनके उपन्यास की कथा का आरम्भ होता है, फिर कथा विकसित होती है अगर अंत में किसी निष्कर्ष पर पहुँच कर समाप्त हो जाती है।

'त्याग–पत्र' में ऐसा नहीं होता। उपन्यास के प्रारंभ में लिखा हुआ है कि यह 'मौलिक सामाजिक उपन्यास' है और इसके लेखक जैनेन्द्र कुमार हैं। अर्थात यह अनुवाद नहीं है। इसके बाद उपन्यास से जैनेन्द्र कुमार गायब हो जाते हैं। पाठकों को यह अवश्य सूचित किया गया है कि यह उपन्यास अंग्रेजी में लिखा गया है, जिसका हिंदी उल्था यहाँ दिया गया है। इसे सर एम. दयाल ने लिखा है जो संयुक्त प्रांत के चीफ जज थे। फिर उन्होंने जजी से त्यागपत्र दे दिया और हरिद्वार में जाकर रहने लगे। दो महीने पहले उनका स्वर्गवास हो गया। उनके कागजों में यह पाण्डुलिपि मिली है, जिसमें व्यक्तियों और स्थानों के कुछ नाम बदल दिए हैं। यह हम आपको पहले भी बता चुके हैं। अब इस उपन्यास में से मि. दयाल अनुपस्थित हो जाते हैं। यहाँ प्रमोद नामक नया पात्र आता है। यह प्रमोद उस उपन्यास का कथावाचक है, जो अपनी बुआ मृणाल के जीवन की कहानी कहता है। आरम्भ में ही यह भी बता दिया जाता है कि मृणाल की मृत्यु हो चुकी है। प्रमोद अपने पद से त्याग पत्र दे देता है। इस संरचना के भीतर यह उपन्यास लिखा हुआ है। उपन्यास का अंत होते–होते मि. दयाल फिर आते हैं और

BHDC-109_4th proof.indd 140 8/6/2021 2:09:08 PM

अपना त्याग पत्र लिखते हैं और उपन्यास समाप्त हो जाता है। इसको इस तरह से समझ सकते हैं– लेखक जैनेन्द्र कुमार → चीफ जज–सर एम. दयाल → कथावाचक प्रमोद → कथा की प्रमुख पात्र, मृणाल → और–अंत में उपन्यास के पाठक।

कथा के प्रारम्भ में ही पता चलता है कि मृणाल की कारुणिक मृत्यु हो चुकी है, इसलिए पूरी कहानी करुणा से ओत–प्रोत है। इसमें प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की कहानी कहता है। इस प्रक्रिया में प्रमोद का अपना व्यक्तित्व भी उद्घाटित होता चलता है। मृणाल की कहानी को हम प्रमोद की आँखों से देखते हैं। मृणाल यदि स्वयं अपनी कहानी कहती तो उसमें कुछ और नई बातें आ सकती थीं या लेखक स्वयं कहता, तब भी कथा की संरचना बदल जाती। परन्तु ऐसा नहीं हो पाया। प्रमोद ने जैसा देखा, जितना देखा, उतना और वैसा ही वर्णन हमें दिखाई देता है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि यह वर्णन एकांगी और कथावाचक की दृष्टि से अभिव्यक्त हुआ है। घटना के जिस स्थान पर प्रमोद उपस्थित है, उसी का संस्करण वह सुना सकता है। जब कहीं वह अनुपस्थित रहता है तब वह सूचनाओं के सहारे कथा के तार जोड़ता है। वह अंदाजा लगाता है या आत्म चिंतन के लिए कुछ निष्कर्ष निकालता है। यह अत्मचिंतन डायरी की तरह बन जाता है। इस तरह यह प्रामाणिक अनुभव तो है, परंतु यह एकांगी हो सकता है। हालाँकि प्रमोद अपनी ओर से पर्याप्त तटस्थ बने रहने का प्रयास करता है।

7.7.1 शैली

जैनेन्द्र कुमार का यह उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा हुआ उपन्यास नहीं है। ऐसी वर्णनात्मक शैली का प्रयोग प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है। जैनेन्द्र कुमार ने आत्मकथात्मक और संस्मरणात्मक शैली में इस उपन्यास की रचना की है। वर्णनात्मक शैली में लेखक स्वयं सर्वज्ञ होता है तथा वही संपूर्ण घटनाओं का वर्णन करता है। जबकि इस उपन्यास में लेखक से अलग एक कथावाचक है। इस कथावाचक से अलग एक लेखक की कल्पना भी की गई है जो उपन्यास में आगे चलकर कथावाचक से अभिन्न हो जाता है। यह कथावाचक पाठकों को अपनी बुआ मृणाल के जीवन की कहानी सुनाता है अर्थात् इस उपन्यास का पाठक एक तरह का श्रोता है। उन्हें प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की कहानी सुना रहा है। चूँकि इन कथाओं का साक्षी प्रमोद ही है। अतः वह अपनी समझ और जानकारी से पाठकों को अवगत कराता चलता है। पाठक को तो आप विशद वर्णन भी पढ़ा सकते हैं, लेकिन श्रोता के पास न इतना धैर्य होता है और न इतना समय होता है, इसलिए इसमें संक्षेप में ही मूल बात और घटनाओं को कहा गया है। जहाँ या जिस स्थिति–परिस्थिति में प्रमोद अनुपस्थित रहता है, वहाँ की सूचनाएँ उसे अन्य पात्रों से मिलती हैं। इन अन्य पात्रों में उपन्यास की नायिका मृणाल को भी शामिल किया जा सकता है।

इस उपन्यास में कथावाचक सिर्फ मृणाल की कहानी ही नहीं कहता, वरन् अपनी प्रतिक्रियाओं से भी वह पाठकों को अवगत कराता चलता है। इसलिए उपन्यास में दो प्रमुख पात्र उभरकर आते हैं– एक कथावाचक प्रमोद और दूसरा उपन्यास की नायिका मृणाल। संस्मरण शैली में प्रमोद और मृणाल दोनों का जीवन और घटनाएँ हमारे सामने आती हैं।

जैनेन्द्र कुमार का यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास की श्रेणी में माना जाता है। अतः इसमें मृणाल के भाव और विचारों की अभिव्यक्ति पर अधिक जोर दिया गया है। शहरी परिवेश और जीवन का उतना ही वर्णन किया गया है, जिससे मृणाल या प्रमोद का संबंध है। यहाँ जीवन को अनुभूत करना महत्वपूर्ण है। इसलिए प्रमोद की माँ या शीला का भाई या मृणाल का पति या कोयले वाला महत्वपूर्ण नहीं हैं। महत्वपूर्ण वे भाव और विचार हैं जो इन पात्रों के बारे में मृणाल या प्रमोद सोचते–विचारते हैं। उपन्यास

BHDC-109_4th proof.indd 141 8/6/2021 2:09:08 PM

को संपूर्णता में समेटने के लिए जैनेन्द्र ने वैचारिक गद्य की तरह चिंतन परक बातें भी स्थान–स्थान पर उपन्यास में कही हैं। इन चिंतन परक बातों के माध्यम से मृणाल की पीड़ा और उसका चरित्र हमारी समझ में आता चलता है।

7.7.2 संवाद

'त्याग–पत्र' उपन्यास का आरंभ जिस स्थिति से होता है और जो उपन्यास का अंतिम हिस्सा है, वह एक तरह का आत्म संवाद है। प्रमोद के पास खबर आती है कि मृणाल मर गई, अब वह विचार करता है 'कैसे मर गई जानने की कोई जरूरत नहीं है। जो जाने बैठा हूँ, वही कम नहीं है। उसी को पचा सकूँ तो कुछ का कुछ हो जाऊँ।

बुआ, तुम गईं। तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ। जगत का आरंभ समारंभ ही छोड़ दूँगा।'

यदि इस उपन्यास की शैली और संरचना को देखा जाए तो यह पूरा उपन्यास संवादपरक है। यह संपूर्ण उपन्यास श्रोता को संबोधित है। प्रमोद किसी को मृणाल की कथा सुना रहा है। यह कथा कहीं लिखी नहीं है इसलिए इसमें आई हुई घटनाएँ और प्रकरण बहुत सीमित हैं। परिस्थितियों और दृश्यों का वर्णन–विवरण बहुत कम है। संवाद भी बहुत छोटे–छोटे हैं। बड़ी बातें भी सहज बोधगम्य रूप से सुनकर समझने में आने लायक हैं।

संवाद के रूप में लिखने के बावजूद इसमें पात्रों का आपसी संवाद बहुत कम होता है। मृणाल और कोयले वाले के बीच कोई बातचीत नहीं होती। प्रमोद के माता–पिता भी आपस में कोई संवाद नहीं करते। प्रमोद की माँ मृणाल से शायद ही कुछ बोलती है। व्यक्तिगत संवाद मृणाल और प्रमोद के बीच में ही होता है। इन संवादों से मृणाल का चरित्र अभिव्यक्त होता है। पाठक प्रमोद की मानसिक स्थिति से अवगत होता है। संक्षिप्त बातचीत से कथा आगे बढ़ती है अथवा पिछले जीवन की जानकारी मिलती है। यह जानकारी प्रमोद अपने पाठकों या श्रोताओं को दे देता है। इन संवादों से भी हमें पता चलता है कि मृणाल अपने ढंग से नैतिक जीवन जीती है या वह जैसा भी जीवन जीती है, उसकी अपने लिए नैतिक व्याख्या कर लेती है।

सारे संवाद मुद्दों पर केन्द्रित हैं और मुद्दा हमेशा संक्षिप्त होता है। मुद्दे के आसपास की बातें ये दोनों पात्र बहुत कम करते हैं। उदाहरण के लिए मृणाल सहज रूप से बता देती है कि वह 'कोयले वाले के बच्चे की माँ मनने वाली है' या 'वह कोयले वाला अब जल्द ही उसे छोड़कर चला जाएगा।' बड़ी घटनाओं की जानकारी भी मृणाल सहज रूप से दे देती है। उसमें किसी तरह का कोई भावात्मक आवेग या आक्रोश नहीं होता। बातें तथा घटनाएँ कथन की तरह आती हैं, परन्तु कथावाचक पर और इस तरह पाठकों पर उनका गहरा असर पड़ता है और यही इस उपन्यास की कला की सफलता है।

'त्याग–पत्र' में संवाद बहुत कम हैं। लेखक प्रमोद के माध्यम से वर्णन करता जाता है। जहाँ वह उपस्थित रहता है, वहाँ जो कुछ सुनता है, उन्हें वह पुनः प्रस्तुत करता है। इन संवादों के माध्यम से पाठक को मृणाल की मनःस्थिति, उसकी सामाजिक स्थिति और उसके विचारों का पता चलता है। यह अवश्य है कि इन संवादों में मृणाल बहुत तर्कशील, जीवंत और हठी पात्र के रूप में हमारे सामने आती है। प्रमोद और मृणाल की बातचीत हो रही है। मृणाल बीमार है, प्रमोद कहता है–

''चलो, तुम्हें यहाँ के अस्पताल में भर्ती करा दूँ।''

उन्होंने कहा–जो बात मैंने कही वह तेरी समझ में नहीं आई न। चलो ठीक है। नहीं भाई, अस्पताल में क्यो जाऊँगी। मैंने बताया–अस्पताल में इंतजाम ठीक हो जाएगा। प्राइवेट वार्ड में कर दूँगा। खर्च की फिक्र कुछ मत करो, बुआ। बुआ ने बीच में टोक कर कहा–''लेकिन वही तो फिक्र मुझे है, प्रमोद। तुम बहुत सा रुपया दे जाओ तो क्या

BHDC-109_4th proof.indd 142 8/6/2021 2:09:08 PM

अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में दौड़कर में चली जाने वाली हूँ? प्रमोद देह है, तब तक दस बीमारियाँ लगी है। घबराहट किस बात की है।''

बातचीत का तरीका बहुत सहज है। असहमतियाँ भी बहुत आत्मीय तरीके से व्यक्त की गई हैं। भाषा भी सहज बोधगम्य है। इस तरह भाषाओं और कला की दृष्टि से सम्प्रेषण की कोई समस्या नहीं है। हालाँकि विचार के स्तर पर गंभीरता बराबर बनी रहती है, जो प्रमोद को बैचेन करती रहती है और पाठक भी सोचता रहता है कि दोनों की बातचीत का क्या निर्णय होने वाला है।

7.7.3 भाषा

जैनेन्द्र कुमार की भाषा प्रेमचंद की भाषा परंपरा से भिन्न है। 'त्याग–पत्र' में जैनेन्द्र ने उर्दू–फारसी मिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग नहीं किया। वे आमतौर से सरल तत्सम शब्दों से युक्त सहज भाषा का प्रयोग करते हैं। इसके साथ ही वे जयशंकर प्रसाद की भाँति आलंकारिक तत्सम शब्दों का प्रयोग भी नहीं करते। वे अपनी भाषा को भरसक काव्यात्मक होने से बचाते हैं। उनकी भाषा प्रौढ़ और गंभीर है। चूँकि 'त्याग–पत्र' एक चिंतनपरक उपन्यास है, इसलिए इसकी भाषा भी चिंतनपरक है। जैनेन्द्र उपन्यास में हास्य का प्रयोग लगभग नहीं करते। कई बार उनकी भाषा में व्यंग्य अवश्य आता है, परन्तु यह व्यंग्य भी मर्यादा की सीमा में रहता है। मृणाल और प्रमोद दोनों औपचारिक और गंभीर भाषा में सोचते और बोलते हैं। अपना क्रोध और नाराजगी भी वे संयत भाषा में ही व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए मृणाल का पति मृणाल को अपने घर से निकाल देता है। उस समय भी उसकी भाषा असंयत नहीं होती। मृणाल उसकी भाषा को उद्धृत करते हुए कहती है, ''मैं तेरा पति नहीं हूँ।'' या ''हाँ जाओ। अपने मैके चली जाओ।' या फिर 'जो चाहे कर चाहे जहाँ जा।' बिना अपशब्दों का प्रयोग किए संयत तरह से मृणाल का पति अपनी बात कहता है।

इसी गंभीरता से प्रमोद का चिंतन चलता रहता है। ''आज जो बुआ की अवस्था है, उसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार नहीं हैं। यह बात चित्त पूरी तरह नहीं मान पाता था। फिर भी इस अवस्था में भी बुआ के व्यवहार में कुछ ऐसी वास्तविकता थी कि मेरे लिए संभव न हुआ कि मैं अपने अहं भाव में उन पर घमण्ड करूँ।''

'त्याग–पत्र' की भाषा में संयमता है, सहजता है, साथ ही किसी प्रकार का आक्रोश और भावुकता नहीं है। सारी पीड़ा भीतरी है और इस भावाकुल पीड़ा के बाद की निश्चिंतता रचना में आद्योपात मौजूद है। इस उपन्यास में कोई खल पात्र नहीं है और इस रूप में कोई नायक–नायिका भी नहीं है। फिर भी लेखक अपनी तरफ से किसी को दोष नहीं देता। इस कारण 'त्याग–पत्र' की भाषा में एक तटस्थता और वस्तुपरकता है।

7.8 जीवन दृष्टि

जैसा कि हमने पहले भी बताया है कि मृणाल के जीवन के दुःखों का कारण 'यौन–शुचिता की धारणा और पतिव्रता की धारणा' है। लेखक इसका विस्तार से वर्णन करते हैं लेकिन उपन्यास के अंत होते–होते मृणाल स्वयं इस पतिव्रता की धारणा से सहमत हो जाती है। वह कहती है, ''मैं समाज को तोड़ना–फोड़ना नहीं चाहती हूँ। समाज टूटी कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे। या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे। इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ।'' इसलिए वह कभी भी और कहीं भी विद्रोह नहीं करती। यहाँ तक कि कहीं अपना विरोध भी दर्ज नहीं करती। स्वयं जैनेन्द्र मानते हैं कि ''जो शास्त्र में–नहीं–मिलता, वह ज्ञान आत्मव्यथा से मिलता है।'' इस आत्मव्यथा का मूर्तिमान रूप है मृणाल। एक प्रसंग में वह प्रमोद से कहती है, ''सहायता मुझे इसलिए चाहिए कि मेरा मन पक्का

BHDC-109_4th proof.indd 143 8/6/2021 2:09:08 PM

होता रहे कि कोई मुझे कुचले, तो भी मैं कुचली न जाऊँ और इतनी जीवित रहूँ कि उसके पास के बोझ को भी लेलूँ और सबके लिए क्षमा की प्रार्थना करूँ।''

बहुत बाद में प्रमोद को लगता है और प्रमोद के माध्यम से जैनेन्द्र को लगता है कि ''कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़बड़ है सारी सृष्टि गलत है। समाज गलत है। जीवन ही हमारा गलत है सारा चक्कर यह ऊटपटाँग है, इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है।'' अपने इस चिंतन को जैनेन्द्र आगे नहीं बढ़ाते और अंततः अपने चिंतन को सामंजस्य की तरफ मोड़ देते हैं।

7.9 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण.

'अच्छा, सच–सच बताती हूँ। मैं तेरे साथ रहना चाहती हूँ। रखेगा!'

यह कहकर उन्होंने ऐसा देखा कि मैं झेंप गया और तब उन्होंने मुझे खींचकर अपनी गोद में ले लिया। फिर एकाएक मुझे अपने से चिपटाकर बोली– 'एक बात बता। तुझे बेंत खाना अच्छा लगता है!''

मैंने कहा–'बेंत!'

बोलीं– 'मैं एक बार तुझे बेंतों से पीटना चाहती हूँ। देखूँगी, तुझे कितना अच्छा लगता है।'

बुआ अजब तरीके से बातें कर रही थीं। मैंने कहा– 'ये कैसी बातें कह रही हो!'

बोली–'सच–सच कहती हूँ, प्रमोद। किसी और से नहीं कहा, तुझे कहती हूँ। बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता। न यहाँ अच्छा लगता है, न वहाँ अच्छा लगता है।'

मैं आश्चर्य में रह गया। बोला–'क्या कहती हो बुआ! वह मारते हैं!'

'हाँ मारते हैं।'

'बेंत से मारते हैं।'

संदर्भ :

प्रस्तुत गद्यांश जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्याग–पत्र' से लिया गया है। प्रस्तुत प्रकरण मे उपन्यास का कथावाचक प्रमोद और उसकी बुआ मृणाल के बीच आत्मीय बातचीत होती है। प्रमोद मृणाल के जीवन की पीड़ा के बारे में जानना चाहता है। और मृणाल उसे अपनी भावनाओं से अवगत कराती है। इस प्रक्रिया में वह अपने पति द्वारा की गई शारीरिक प्रताड़ना की जानकारी भी प्रमोद को देती हैं।

व्याख्या :

मृणाल प्रमोद से कहती है कि वह उसे सच ही बता रही है। ऐसा सत्य जो उसने अभी तक किसी को नहीं कहा। वह अत्यंत सहज तरीके से अपनी आंतरिक भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहती है कि वह प्रमोद के साथ ही रहना चाहती है। परन्तु यह कहते समय वह जानती है कि ऐसा संभव नहीं है। तब भी ऐसी इच्छा तो उसके हृदय में हो ही सकती है। इसलिए थोड़ा परिहास करते हुए मृणाल प्रमोद से पूछती है कि क्या वह उसे अपने पास रखेगा। इसका एक अर्थ यह भी है कि क्या वह उसे अपने साथ रख पाएगा ? मृणाल जानती है कि ऐसा संभव नहीं है। वह जीवन भर अपने भतीजे के साथ नहीं रह सकती। इसलिए केवल इतना ही कहकर अपनी बात आगे बढ़ा देती

BHDC-109_4th proof.indd 144 8/6/2021 2:09:08 PM

है। अपनी बात कहने के बाद मृणाल ने प्रमोद को ऐसी प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा कि प्रमोद झेंप गया। वह स्वाभाविक नहीं रह पाया। और तब मृणाल के हृदय में प्रमोद के प्रति स्वाभाविक स्नेह उत्पन्न हुआ। और इसी की अभिव्यक्ति करते हुए मृणाल प्रमोद को अपनी गोद में ले लेती है। अपने से चिपटाकर वह एक तटस्थ सा वक्तव्य देती है। वह प्रमोद से पूछती है कि क्या प्रमोद को बेंत खाना अच्छा लगता है। यहाँ स्पष्ट है कि बेंत खाना किसी को अच्छा नहीं लग सकता, फिर भी मृणाल प्रमोद से यह प्रश्न पूछती है। प्रमोद को इस प्रश्न का स्पष्ट आशय समझ में नहीं आता इसलिए वह 'बेंत' शब्द बोलकर चुप हो जाता है। आगे अपनी बात को स्पष्ट करते हुए मृणाल कहती है कि वह एक बार प्रमोद को बेंत से पीटना चाहती है। बेंत से पिटने पर प्रमोद को क्या अच्छा लगेगा! मृणाल अपनी बात कहने के लिए, अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए इस वक्तव्य को तर्क के रूप में प्रयुक्त करती है। इस पर प्रमोद असमंजस की स्थिति में आ जाता है। मृणाल प्रमोद से कितना प्रेम करती है, यह बात प्रमोद भली–भाँति जानता है। मृणाल भी यह जानती है। मृणाल प्रमोद से बेंत से पीटेगी यह उन दोनों कल्पना से परे है। अतः प्रमोद प्रश्नवाचक दृष्टि से कहता है कि उसकी बुआ कैसी अजीब बातें कर रही है। मृणाल अपनी रौ में बहती हुई कहती है कि उसने यह बात उसने पहले किसी को नहीं कही है और न ही वह किसी को आगे कहेगी। प्रमोद उसका अपना है इसीलिए वह प्रमोद से स्वयं की बेंत द्वारा हुई पिटाई का सत्य उद्‌घाटित कर रही है। साथ ही यह भी कि बेंत खाना मृणाल को अच्छा नहीं लगता। न मैके में और न ससुराल में। अर्थात् मृणाल को प्रमोद की माँ ने बेंत से पीटा है, यह बात मृणाल को बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगी। और अब ससुराल में उसका पति उसे बेंत से पीटता है, यह बात भी उसे कष्ट देती है। इस तरह मृणाल एक भूमिका बाँधकर प्रमोद को अपने कष्ट का परिचय देती है कि ससुराल में उसका पति उसे बेंत से पीटता था, यही कारण है कि वह ससुराल में खुश नहीं है।

विशेष :

1. इस गद्यांश में मृणाल अपनी अनकही पीड़ा को अभिव्यक्त करती है और प्रमोद के साथ अपने आत्मीय संबंधों को अनुभूत भी कराती है।
2. इसमें मृणाल का संवेदनशील व्यक्तित्व भी प्रकट होता है जहाँ वह पीड़ा को पीड़ा के रूप में पहचानती है और अभिव्यक्त करती है। इस अभिव्यक्ति में कहीं भी भावावेग नहीं है। केवल तथ्यात्मक स्थिति का अंकन है।

7.10 सारांश

'त्याग–पत्र' का प्रकाशन 1937 ई. में हुआ। इसके प्रारम्भ में एक कल्पित कथा दी गई है, जिसके अनुसार सर. एम. दयाल ने इसका लेखन अंग्रेजी में किया। उसका हिंदी उल्था यह उपन्यास है। उपन्यास का कथावाचक प्रमोद है, जो अपनी बुआ मृणाल के जीवन की कहानी कहता है। इस उपन्यास की संरचना आत्मकथा और संस्मरणात्मक शैली में की गई है। यह शैली प्रेमचंद की विवरण प्रधान शैली से अलग है। उपन्यास का प्रारम्भ मृणाल की मृत्यु की जानकारी से होता है। इसके बाद प्रमोद अपने बचपन से कहानी का प्रारम्भ करता है। मृणाल के जीवन की पीड़ा के साथ जैनेन्द्र समाज में स्त्री की स्थिति, यौन–शुचिता की धारणा और पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर कई सवाल खड़े करते हैं। उपन्यास में तीन पात्र मृणाल को बेंट से पीटते हैं– स्कूल का शिक्षक, प्रमोद की माँ और मृणाल का पति, जिसका वह उस समय विरोध नहीं कर पाती परन्तु उसकी कसक मृणाल के हृदय में गड़ी हुई है। मृणाल और शीला के भाई के बीच शारीरिक संबंध कायम हो जाना इस उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। इस

BHDC-109_4th proof.indd 145 8/6/2021 2:09:08 PM

घटना से प्रमोद की माँ और मृणाल का पति नाराज हो जाते हैं। प्रमोद की माँ उसका अनमेल विवाह कर देती है, पति को जब उसके और शीला के भाई के स्नेह–संबंध की जानकारी मिलती है तो वह मृणाल को घर से निकाल देता है। तब वह कोयले वाले के साथ रहने लगती है। वह भी उसे छोड़कर चला जाता है। अब मृणाल मिशन अस्पताल और डॉक्टर के घर होती हुई समाज के तथाकथित 'निकृष्ट' तबके में पहुँच जाती है। उपन्यास का अंत होते–होते एक बार मृणाल प्रमोद से इन लोगों के लिए रुपये मांगती है, जो प्रमोद नहीं देता। फिर वह सत्रह वर्षों तक मृणाल से नहीं मिलता और मृणाल की मृत्यु हो जाती है। इसके बाद प्रमोद पश्चाताप में जज के पद से त्याग–पत्र दे देता है और उपन्यास समाप्त हो जाता है।

जैनेन्द्र कुमार का यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास की श्रेणी में आता है, अतः इसमें मृणाल की भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति पर ज़ोर दिया गया हैं। यह उपन्यास संवादपरक है और श्रोता को संबोधित है। उपन्यास में मुख्य रूप से दो पात्र हैं– मृणाल और प्रमोद। 'त्याग–पत्र' की भाषा में तटस्थता और वस्तुपरकता है।

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों–1 के उत्तर

1. ✓, 2. ✗, 3. ✗

2. क) त्याग–पत्र उपन्यास डायरी और संस्मरण शैली में लिखा गया उपन्यास है। कथावाचक प्रमोद अपने निजी अनुभव और अपनी बुआ के जीवन के संस्मरण सुनाता है।

   ख) मृणाल राजनंदिनी के घर में नौकरानी थी तथा वहाँ बच्चों को ट्यूशन पढ़ाया करती थी। जब राजनंदिनी के परिवार को पता चला कि वह मृणाल होने वाले दामाद प्रमोद की बुआ है, तब राजनंदिनी के परिवार ने विवाह करने से इन्कार कर दिया।

   ग) अपने मैके में मृणाल को प्रमोद की माँ ने बेंत से मारा था तथा ससुराल में उसके पति ने मारा था।

3. 1) प्रमोद की माँ, 2) आर्यगृहिणी, 3) प्रमोद को।

BHDC-109_4th proof.indd 146 8/6/2021 2:09:08 PM

इकाई 8 'त्याग–पत्र' के चरित्र

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रमुख पात्र

8.2.1 मृणाल

8.2.2 प्रमोद

8.3 'त्याग–पत्र' के सहायक पात्र

8.3.1 प्रमोद के पिता

8.3.2 प्रमोद की माँ

8.3.3 शीला और उसका भाई

8.3.4 मृणाल का पति

8.3.5 कोयले वाला

8.4 सारांश

8.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

यह इकाई 'त्याग–पत्र' उपन्यास के विशिष्ट चरित्रों पर आधारित है। उपन्यास के अध्ययन की प्रक्रिया में आप देखेंगे कि उपन्यास में पात्रों की संख्या बहुत कम है। जैनेन्द्र ने संवादों और विश्लेषण के माध्यम से चरित्रों की विशेषताओं को उभारा है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'त्याग–पत्र' के प्रमुख चरित्रों की विशेषताओं को समझा सकेंगे;
- 'त्याग–पत्र' के सहायक पात्रों की जानकारी दे सकेंगे;
- 'त्याग–पत्र' उपन्यास के चरित्रों के विश्लेषण के माध्यम से 'त्याग–पत्र' की मूल संवेदना को समझा सकेंगे; और
- 'त्याग–पत्र' उपन्यास के लेखक की दृष्टि को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

''त्याग–पत्र'' जैनेन्द्र कुमार का बहुत छोटा–सा उपन्यास है। इसमें पात्र भी बहुत कम हैं। इसमें मुख्य रूप से दो पात्र हैं – एक कथावाचक प्रमोद और दूसरा इस उपन्यास की प्रमुख पात्र, मृणाल। कथावाचक इस मृणाल की कथा और उसके जीवन की गति के बारे में बताता है। कथानायक प्रमोद का चरित्र भी प्रकट होता जाता है। इसके अलावा कुछ सहायक पात्र हैं, जिनसे मृणाल और प्रमोद का जीवन प्रभावित होता है। इनमें प्रमोद की माँ, उसके पिता, मृणाल का पति, कोइले वाला, अस्पताल के कर्मचारी, शीला और उसका भाई प्रमुख हैं। ये पात्र बहुत थोड़ी देर के लिए उपन्यास में आते हैं, परन्तु ये अपनी सक्रियता से मृणाल के जीवन में बड़ा परिवर्तन कर जाते हैं। इसलिए मुख्य पात्रों पर विचार करते समय इन सहायक पात्रों की चर्चा करना भी आवश्यक है। हालाँकि इन पात्रों का महत्व इसी कारण है, क्योंकि इनका सम्बन्ध मृणाल से है,

BHDC-109_4th proof.indd 147 8/6/2021 2:09:08 PM

अन्यथा इनके चरित्र में कोई विशेष बात नहीं है। मृणाल की दृष्टि से ये सभी पात्र बहुत महत्वपूर्ण हैं। कोई भी अनावश्यक पात्र इस उपन्यास में नहीं है।

8.2 प्रमुख पात्र

त्याग–पत्र का उद्देश्य मृणाल के जीवन को जानना–समझना है। मृणाल का जज भतीजा प्रमोद यह प्रयास करता है। उसने अपने बारे में तथा अन्य पात्रों के बारे में स्थान–स्थान पर लिखा भी है। इस उपन्यास में पात्र बदलते नहीं। उपन्यास के भीतर उनका विकास नहीं होता। जैसे चारित्रिक गुणों के साथ वे उपन्यास में आते हैं, वैसे ही वे अंत तक बने रहते हैं। पात्रों की यह विशेषता सहायक पात्रों के साथ–साथ प्रमुख पात्रों पर भी लागू होती है। सहायक पात्र तो अन्य उपन्यासकारों में भी यथावत बने रहते हैं, परन्तु नायक–नायिका विकसित हो जाते हैं। 'त्याग–पत्र' में ऐसा कुछ नहीं होता। आदर्शवादी भावुक प्रमोद उपन्यास के अंत तक वैसा ही बना रहता है। मृणाल का पति, पिता, माँ और कोइले वाले के चरित्र में जरा भी परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता। यहाँ तक कि मृणाल के चरित्र में भी कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं होता। उसका जीवन बदलता है। परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, विकसित होती हैं, परन्तु मृणाल अंत तक वैसी ही बनी रहती है। शायद उसको परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको बदलना नहीं आता। इसीलिए वह ट्रेजिक चरित्र बनी रहती है। यदि बदलना आता तो वह भी प्रमोद की तरह एक सफल चरित्र बन सकती थी।

8.2.1 मृणाल

विशिष्ट पात्र की दृष्टि से सबसे पहले मृणाल के चरित्र पर विचार किया जाना चाहिए। मृणाल के किशोरावस्था में आने से पहले ही वह उपन्यास में आ जाती है। वह शहर के नामी स्कूल में पढ़ती है और बग्घी में बैठकर स्कूल जाती है। उसके माता–पिता की मृत्यु हो चुकी है। वह अपने भाई–भाभी के साथ रहती है। परिवार में उसका एक भतीजा है– प्रमोद, जिसे वह बहुत प्यार करती है। वय के इस पड़ाव पर वह निश्चिंत है। सामान्य किशोरी की भाँति वह भी शैतान किशोरी है और स्कूल की शैतानियों को घर में आकर वह प्रमोद को बताती है। उसकी शीला नामक एक सहेली है, जो उसके साथ ही पढ़ती है। एक बार शीला ने अपने गणित के मास्टर की गद्दी में पिन चुभोकर रख दी। मास्टर ने सबसे पूछा कि यह हरकत किसने की ? मृणाल को पता था कि यह शरारत शीला ने की थी, जब कोई कुछ नहीं बोला तब मृणाल ने कहा, ''यह मेरा कसूर है, मास्टर जी।'' इसमें न किए गए अपराध के लिए उसने मास्टर जी से बेंत खाई। इसका उसने न तो प्रतिकार किया और न शीला को कुछ कहा। प्रमोद को भी वह सामान्य ढंग से ही बताती है कि जब वह जब मार खा रही थी, तब शीला ''मुझे ऐसे देखने लगी जैसे खा जाएगी।'' यह मृणाल के चरित्र की प्रथम उपस्थिति है।

यौन शुचिता और पतिव्रता की धारणा

मृणाल के जीवन की पीड़ा के दो मुख्य कारण हैं – यौन शुचिता की धारणा और पतिव्रता की धारणा। ये दोनों धारणाएँ भारतीय समाज में बद्धमूल हैं। जो कोई इन धारणाओं से टकराता है या किसी भी कारण से इन धारणाओं के अनुरूप जीवन नहीं जी पाता, उसका जीवन नरक बन जाता है। ये दोनों धारणाएँ सिर्फ स्त्रियों पर लागू होती हैं। यौन–शुचिता तो इतनी बलवती है कि उस पर तो कोई चर्चा तक नहीं करता। मृणाल के जीवन में शीला का भाई आता है। उनके संबंधों का केवल आभास ही उपन्यास में दिखाया गया है। इस संबंध के कारण उसे घर में शारीरिक–मानसिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। इसी के कारण उसका बेमेल विवाह हो जाता है और इसी के कारण अन्ततः उसको अपना पति–गृह छोड़ना पड़ता है। इस अपराध के उपरान्त दिए गए दंड की कोई अपील भी नहीं होती। मृणाल भी उपन्यास में कोई विरोध या

BHDC-109_4th proof.indd 148 8/6/2021 2:09:08 PM

अपील नहीं करती और अन्ततः वह ऐसी जगह पहुँच जाती है जहाँ शुचिता की यह धारणा निरर्थक हो जाती हैं। प्रमोद की बुआ यानी मृणाल के पति जब बुआ को लेने आते हैं, तब यह कहना नहीं भूलते कि ''बहू–बेटियों की चलन की रीति–नीति हुआ करती है। अपने तो वही पुराने अकीदे हैं। अपना कुल–शील चला आता है, वह न निभा तो फिर क्या रह गया। जरा ये बातें समझा देनी चाहिए।'' इशारे से और समझाते हुए वे इसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पतिव्रता की धारणा की ही बात करते हैं।

मृणाल शीला के घर आने–जाने लगती है। एक दिन पता चलता है कि शीला के भाई से मृणाल के शारीरिक सम्बन्ध बन गए हैं। इस सम्बन्ध में कुछ ''गलत'' हो गया, इसका एहसास मृणाल को नहीं होता। प्रमोद की माँ को इसका एहसास होता है और वह डंडे से उसकी पिटाई करती है। पिटने के बावजूद उसको पता नहीं चलता कि उसे क्यों पीटा जा रहा है। इस तरह अकारण प्राप्त पीड़ा मृणाल के जीवन की सबसे बड़ी पीड़ा है। उस मार का उसने कोई प्रतिकार नहीं किया। वह चुपचाप मार खाती रही। अन्याय को बिना प्रतिरोध के स्वीकार कर लिया, मानो यही उसकी नियति है। प्रमोद की माँ से मार खाने के बाद ''वह दिन था कि फिर बुआ की हँसी मैंने नहीं देखी। ''

प्रमोद की माँ जिस 'आर्य गृहिणी' की कामना करती है, वह यही यौन–शुचिता की धारणा है। प्रमोद के माता–पिता दोनों मृणाल को इस बात का दोषी मानते हैं कि मृणाल ने यौन–शुचिता की धारणा का खंडन किया है। चाहे जान बूझकर किया है या अपने आप हो गया है, परन्तु यह दोष है। उसे इस दोष का फल मिला। प्रमोद के माता–पिता इस दोष से तो फिर भी उबर गए, परन्तु मृणाल ने पतिव्रता धर्म का पालन नहीं किया। पति को छोड़कर वह किसी अन्य पुरुष के साथ रहने लगी। प्रमोद के माता–पिता और जिस समाज में वे रहते हैं उस सामाजिक व्यवस्था में यह अक्षम्य है।

हालाँकि मृणाल कहती है कि मैंने पति को नहीं छोड़ा ''उन्होंने ही मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री–धर्म, पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे।'' इस पर मृणाल भी अन्ततः उसी पतिव्रता धर्म को ही अपनाती है। उस से विद्रोह नहीं करती, बल्कि उसका नया अर्थ करती है। उसने प्रमोद से कहा, ''ब्याह के बाद मैंने बहुत सोचा, बहुत सोचा। सोचकर अंत में यह पाया कि मैं छल नहीं कर सकती। छल पाप है। हुआ जो हुआ, ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है।'' इसी कारण मृणाल ने शीला के भाई से अपने संबंधों की सारी सच्चाई अपने पति को बता दी थी। पति के द्वारा निकाले जाने पर वह मैके क्यों नहीं आई, इस प्रश्न पर मृणाल कहती है कि ''स्त्री जब तक ससुराल की है, तभी तक मैके की है, ससुराल से टूट, तब मैके से तो आप ही टूटी गई थी।'' इस कारण उसने जो निर्णय लिए उससे उसकी छवि 'बदजात की व्यभिचारिणी' की बन गई। वह मानती है और जानती है कि ''विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है।''

मृणाल को जब दुबारा जबर्दस्ती ससुराल भेजा जाता है तब वह अपने भाई के सामने फूट–फूट कर रोती है। वह इसलिए रोती है क्योंकि भाई को अपना मानती है। भाभी से उसका कोई भावनात्मक संबंध नहीं है। यद्यपि भाभी भी थोड़ी भावुक होती हैं। इस भावुकता से उनका चरित्र थोड़ा भला लगने लगता है। परन्तु भाई इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सामने विवश है। जैसे मृणाल विवश है, वैसे ही उसके भाई–भौजाई भी बेबस हैं। इसी तरह प्रमोद भी इन सारी परिस्थितियों के सामने बेबस है। यह बेबसी पारिवारिक–सामाजिक व्यवस्था के सामने थी। यह बेबसी स्त्री की अधिकार हीनता की स्वीकृति थी। मृणाल का भाई मृणाल को समझाता है। वह कहता है कि ''पति के घर के अलावा स्त्री को क्या आसरा है। यह झूठ नहीं है, मृणाल कि पत्नी का धर्म पति हैं। घर पति–गृह है। उसका धर्म, कर्म और उसका मोक्ष भी वहीं है''। दरअसल मृणाल के

BHDC-109_4th proof.indd 149 8/6/2021 2:09:09 PM

कष्टों का कारण यह दर्शन है और यह समझ है। उसके कष्ट के लिए जितने जिम्मेदार उसके पति हैं, उतने ही जिम्मेदार प्रमोद के माता–पिता भी हैं। पहली बार मृणाल की जो पिटाई हुई थी, वह प्रमोद की माँ ने की थी। उसके मूल में यौन–शुचिता की धारणा थी। यह धारणा प्रमोद की माँ के मन में गहरी बैठी हुई थी। और माँ यह भी देख रही थी कि यह धारणा उसके आसपास के समाज में भी बद्ध मूल है।

पिता द्वारा मृणाल को समझाते समय पिता की वाणी 'क्षमाप्रार्थिनी' हो जाती है, क्योंकि बहिन से प्रेम और सामाजिक मान्यताओं में जब तीक्ष्ण अन्तर्विरोध हुआ, बहिन को जब भाई की जरूरत पड़ी तो भाई बहिन के साथ खड़ा नहीं दिखा, अपितु सामाजिक मान्यताओं के साथ खड़ा पाया गया। भाई को भी लगा कि यह गलत हो गया, परन्तु क्या करें? मृणाल को तो अंततः ससुराल वापिस जाना ही था। इस तरह मृणाल के साथ जो कुछ हुआ, वह तो परिस्थितिजन्य विवशता से होना अवश्यंभावी था, वही हुआ। इस तरह मृणाल की ट्रेजडी स्वीकार्य हो गई। यह अलग बात है कि किसी व्यक्ति की बेबसी उसके किसी अनुचित निर्णय में उसे उचित नहीं ठहरा सकती।

इस बेबसी के बावजूद मृणाल के अलावा बाकी सबका जीवन सुरक्षित है। प्रमोद के माता–पिता घर में खुशहाल हैं। सब सुख–सुविधाएँ हैं। मध्यवर्गीय आराम है। प्रमोद भी सफल वकील बनने के बाद जज बन जाता है। सब अपनी इस विवशता के नाम पर तटस्थ हो गए, लेकिन मृणाल का जीवन नरक बनता चला गया। देखते–देखते कोई अपना अत्यंत करीबी इस हालत में पहुँच जाए और हम सुरक्षित बचे रहें, तो अन्ततः हम अपने आपको निर्दोष और उचित नहीं ठहरा सकते। यही कारण है कि प्रमोद भी अपने आपको उचित नहीं ठहरा पाता और ग्लानि में जीता है।

ससुराल से वापिस आने के बाद प्रमोद मृणाल से पूछता है कि तुम्हें तकलीफ क्या है ? वह बहुत ही सहज भाव से कहती है कि ''बेंत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता। यहाँ अच्छा लगता है न वहाँ अच्छा लगता है।'' तब प्रमोद को पता चलता है कि मृणाल का पति उन्हें पीटता है। इस पर आगे प्रमोद जानना चाहता है कि क्यों पीटते हैं? उत्तर में मृणाल के जीवन का दर्द और उसका व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है– ''मैं खराब हूँ, इसलिए मारते हैं।'' इस वाक्य में मृणाल की नादानी उद्घाटित होती है। मृणाल मानती है और जानती है कि वह 'खराब' नहीं है। वह तो 'खराब' होने की वास्तविकता तक को नहीं जानती–समझती, लेकिन उसके पति जानते हैं और मानते हैं कि मृणाल 'खराब' है। यदि पति यह सोचकर मृणाल को मारते हैं, तो वे कोई गलत नहीं करते। उचित ही करते हैं। इस कारण मृणाल के मन में अपने पति के प्रति कोई विरोध नहीं पनपता। जब सब सही है, तब मृणाल क्या करे, उसका क्या दोष, यही बात मृणाल जानना समझना चाहती है। अपनी अकुलाहट को व्यक्त करती हुई बुआ मृणाल, प्रमोद से कहती है, ''सच जान, प्रमोद मैंने कुछ नहीं किया। मेरी मति भ्रष्ट हो गई है। मुझे कुछ ठीक सूझता नहीं है। मैं जो करती हूँ, क्या जानती हूँ ? यहाँ मुझे कोई भी बताने वाला नहीं है। अपने मन की मैं किससे कहूँ ? प्रमोद, मेरी कुछ समझ में नहीं आता है।''

असहाय और निराश्रित

मृणाल को किसी पर भरोसा नहीं है। जीवन में अकेलेपन का, असहाय होने का, निराश्रित होने का यह एहसास कितना तोड़ता है, इसे मृणाल के चरित्र के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है। एक बार वह प्रमोद से विश्वास और भरोसा लेना चाहती है। वह प्रमोद से पूछती है कि यदि ''मैं तुम्हे कभी बुलाऊँ तो तुम आओगे मेरे पास ?'' फिर स्वयं ही इस प्रश्न से डर जाती है और प्रमोद को मुक्त करते हुए कहती है कि, ''मैं तुझे बुलाऊंगी ही नहीं। कहती हूँ, तुम सब लोग मुझे भूल जाना। मैं जैसी गई वैसी मरी।'' यह एक तरह से तिनके का सहारा है, जिसे मृणाल बचाए रखना चाहती है। इसलिए वह प्रमोद से स्पष्ट कहती है कि यहाँ (इस दुनिया में) मेरा ''कोई नहीं है।''

BHDC-109_4th proof.indd 150 8/6/2021 2:09:09 PM

मृणाल का अकेलापन और वह भी अपने मायके में उसका अकेलापन बहुत मारक है। वह कहती है कि उसका कोई नहीं है, उसे कोई बताने वाला नहीं है, समझाने वाला भी नहीं है। उसकी अभी उम्र ही क्या है, जो देश, दुनिया, समाज और अपने आपको समझ सके। मृणाल का जीवन इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध मौन चीत्कार है। एक ऐसी चीत्कार है जिसे हिंदी समाज ने अनदेखा किया है। वह नहीं जानती कि वह क्या करे। वह सारी दुनिया को वह अपने विरुद्ध खड़ा पाती है। माँ–बाप होते तो एक बात थी। भाई–भौजाई, पति, कोयले वाला–सभी पित्तृसत्ता की मान्यता पर टिका हुए संबंध हैं, मृणाल इन सबके बीच अकेली खड़ी है– नादान, भोली, नासमझ, फिर भी दृढ़ और हठी। सब के अत्याचार के खिलाफ एक चुप्पी लेकर। उसकी यह चुप्पी तथा प्रश्नवाचकता तब भी दृष्टिगत होती है जब उसे जबर्दस्ती ससुराल भेजा रहा है। भतीजा बुआ की स्थिति को देखता है और लिखता है ''ज्यों–ज्यों जाने का दिन आता उनकी निगाह कुछ बंधती–सी जाती थी। जहाँ देखती, देखती रह जाती थी। जैसे सामने उन्हें और कुछ नहीं दीखता, बस भाग्य दीखता है, और भाग्य चीन्हा नहीं जाता। ऐसी अपेक्षित पूछती–हुई–सी निगाह से देखती मानो प्रश्न रोककर भी उत्तर मांगती है कि 'मैं कुछ चाहती हूँ, पर अरे कोई बताएगा कि क्या.....।''

जब प्रमोद बुआ से पूछता है कि उसे पति ने घर से क्यों निकाल दिया तब मृणाल अपनी ईमानदार और निश्छल समझ व्यक्त करती है वह यह कि ब्याह के बाद मृणाल ने सोचा, बहुत सोचा, ''सोचकर अंत में पाया कि मैं छल नहीं कर सकती। छल पाप है। हुआ जो हुआ, ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है।'' मृणाल यौन–शुचिता को पतिव्रता धर्म की अनिवार्य विशेषता नहीं मानती परन्तु प्रमोद की माँ और मृणाल के पति मानते हैं। इसलिए मृणाल ''जो हुआ सो हुआ'', उसे नजरअंदाज करने में विश्वास रखती है। शीला के भाई का एक पत्र आता है। वह पत्र सामान्य था। मृणाल ने उस पत्र का औपचारिक जवाब लिखा और दोनों पत्र ईमानदारी से अपने पति को सौंप दिए। उसके बाद पति ने कहा कि, ''मैं हरामजादी हूँ। मैंने कोई प्रतिवाद नहीं किया। उस दिन से तुम्हारे फूफा ने मुझसे किनारा करना शुरू कर दिया।'' इसलिए प्रमोद को अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहती है कि तुम यह जान लो, ''पति को मैंने नहीं छोड़ा। उन्होंने ही मुझे छोड़ा है।'' अपने पतिव्रत धर्म की नई व्याख्या करती हुई मृणाल कहती है, ''मैं स्त्री–धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे ? वह मुझे नहीं देखना चाहते, यह जानकर मैंने उनकी आँखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा–'मैं तेरा पति नहीं हूँ। तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती। पतिव्रता का यह धर्म नहीं है।' इसके कुछ दिन बाद पति ने ही मुझसे कहा कि अब तुम मेरे घर से निकल जाओ। मैंने उनके निर्णय का विरोध नहीं किया। मुझे वहीं शहर में एक दूर कोठरी में लाकर वह खुद ही छोड़ गए। साथ की जरूरी चीज–बस्त भी उन्होंने लाकर दे दी थी। यह कुल कहानी है।'' यह घटना और पति द्वारा घर से निकाले जाने की वजह मृणाल बहुत सहज रूप में सुना देती है, किसी तरह का भावात्मक आवेग उसमें नहीं रहता।

पति के घर से निकलने के बाद वह एक 'अन्य पुरुष के साथ' रहने लगी। मृणाल ने यहाँ भी अपनी समझ को विश्लेषित किया कि यह पुरुष 'अन्य पुरुष' कैसे हो गया ? तब क्या वह तुम्हारा पति है, इस प्रश्न के उतर में मृणाल कहती है, ''पति ! मैं नहीं जानती। लेकिन मेरा अस्तित्व मेरे लिए नहीं है। इस समय तो बेशक मैं उस पुरुष की सेवा के लिए हूँ।'' अपने इस संबंध की परिणति के संदर्भ में वह कहती है कि महीने दो महीने के भीतर यह आदमी यहाँ से चला जाएगा और मेरे पास एक भी पैसा नहीं छोड़ेगा। तब भी वह मानती है और प्रमोद से कहती है कि, ''जब तक पास है तब

BHDC-109_4th proof.indd 151 8/6/2021 2:09:09 PM

तक वह पुरुष अन्य नहीं है। मेरा सब कुछ उसका है। उसकी सेवा में त्रुटि नहीं कर सकती। पतिव्रत धर्म यही तो कहता है।'' प्रमोद जब मृणाल से अपने साथ खाना खाने के लिए कहता है, तब वह इन्कार कर देती है और कहती है कि उस पुरुष को खाना खिलाने के बाद खायेगी। मृणाल को जिससे भी प्रेम और आश्रय मिलता है, वह उसके प्रति अंत तक समर्पित और ईमानदार ही रहती है।

यहाँ तक स्थितियों–परिस्थितियों और अपने निर्णयों के प्रति वह अपनी दृष्टि से 'सच्चरित्र' है, शेष लोग मानें या न मानें यह उसके लिए कोई महत्व नहीं रखता। लेकिन इसके विपरीत जीवन के अंतिम दिनों में वह जिस समाज में जाकर रहती है वहाँ ''किसी को यह कहने का लोभ नहीं है कि मैं सच्चरित्र हूँ। यहाँ सच्चरित्रता के अर्थ में मानव का मूल्य नहीं माना जाता। दुर्जनता ही मानो कीमत है। यहाँ इसी हिसाब से मानव की घट–बढ़ कीमत है।'' यह ऐसी दुनिया है, ''जहाँ छल असंभव है, जो छल सभ्य समाज में जरूरी ही है। यहाँ तहजीब की मांग नहीं है, सभ्यता की आशा नहीं है। बेहयाई जितनी उघड़ी सामने आये, उतनी यहाँ रसीली बनती है। बर्बरता को लाज का आवरण नहीं चाहिए। मनुष्य यहाँ खुलकर पशु हो सकता है। जो नहीं हो सकता, उसकी मनुष्यता में बट्टा हो सकता है। उसे मज्जा मज्जा तक सच्चा होना होगा, तभी खैरियत है। जो बाहर हो, वही भीतर हो।'' यहाँ मृणाल सभ्य समाज के मानदंडों से अपने आप को नहीं देखती।

क्षमाशील

मृणाल के भीतर एक क्षमाशील, परदुःखकातर नारी है। इसलिए वह सम्पूर्ण उपन्यास में किसी पात्र के विरुद्ध कुछ नहीं बोलती। वह सोचती है कि सबके जीवन जीने का अपना तर्क है और अपने तर्क में वह सही है। सबसे पहले स्कूल के मास्टर ने उसे बेंत से मारा। इस सज़ा के पीछे मास्टर जी का अपना तर्क था। मास्टर जी को कील चुभी थी, अतः उनके द्वारा दोषी को दण्ड देना स्वाभाविक था। मृणाल मानती है कि उसकी गलती नहीं, फिर भी वह उस दंड को स्वीकार करती है। घर में प्रमोद की माँ कमरा बंद करके उसे बेंत से मारती है। खूब जोर–जोर से मार कर वह स्वयं ही थक जाती है। मृणाल, प्रमोद की माँ द्वारा दी जाने वाली इस सज़ा के कारण से अनभिज्ञ है। पहली बार बेंत पड़ने पर मृणाल चिल्लाती है। बाद में निर्द्वंद्व भाव से मार सहती है। हालाँकि जैनेन्द्र कुमार ने उपन्यास में यह कहीं नहीं लिखा कि शीला के भाई से मृणाल का रिश्ता कैसे बना, परन्तु यह अवश्य संकेतित हो जाता है कि मृणाल को यह कदापि मालूम नहीं था कि इस रिश्ते में कुछ 'खराबी' है। इसके बाद प्रमोद की माँ उसके साथ जो भी व्यवहार करती है, उसे वह स्वीकार कर लेती है। यही नहीं, विवाहोपरान्त पति उसे ले जाना चाहते हैं, लेकिन मृणाल हृदय से जाना नहीं चाहती। लेकिन जब प्रमोद उसे रोकने की बात कहता है तो मृणाल कहती है कि 'मैं 'उनकी 'चीज' हूँ, तुम किस दृष्टि से रोक सकते हो' और वह चली जाती है।

अपने भाई से मृणाल बहुत प्यार करती है, भाई को भी मृणाल से प्रेम है। वह अपने भाई को अपनी इच्छा बताती है कि वह ससुराल जाना नहीं चाहती। उसकी इच्छा के विपरीत उसे जबर्दस्ती भेजा जाता है। उसे जाना पड़ता है। उसे बहुत कष्ट होता है परन्तु उसके मन में भाई के प्रति कोई दुर्भावना नहीं आती। मृणाल का पति उसे बेंत से पीटता है। वह सहन करती है। लेकिन यहाँ भी पति मृणाल की दृष्टि में खल पात्र नहीं है। ''वे मुझे 'खराब 'समझते हैं, इसलिए मुझे मारते हैं। यदि मुझे खराब न समझते, तो मुझे नहीं मारते। फिर उन्होंने स्वयं ही मुझे इस कोठरी में भेजा और जरूरी सामान भी दिया। सड़क पर नहीं छोड़ा।''

उपन्यास में आगे चलकर मृणाल एक कोयले वाले के साथ रहने लगती है। कोयले वाला भी मृणाल को छोड़कर चला जाता है। उस समय मृणाल गर्भवती है, तब भी

BHDC-109_4th proof.indd 152 8/6/2021 2:09:09 PM

उसने कोयले वाले की निंदा नहीं की। मृणाल का मानना है कि कोइले वाले का अपना तर्क है, अपने तर्क के हिसाब से उसने उचित निर्णय लिया और अपने परिवार के पास वापिस चला गया। अब जीवन के अंतिम मोड़ पर मृणाल क्या सोचती है इसे भी देख लेना चाहिए। वह कहती है, ''सहायता मुझे इसलिए चाहिए कि मेरा मन पक्का होता रहे, कि कोई मुझे कुचले तो भी मैं कुचली न जाऊं और इतनी जीवित रहूँ कि उसके पाप के बोझ को भी ले लूँ और सबके लिए क्षमा की प्रार्थना करूँ।'' उपन्यास में इस क्षमाशीलता के स्तर तक मृणाल की चेतना पहुँचती है।

मृणाल की तीन अधूरी इच्छाएँ थीं जो पूरी नहीं हुई। सबसे पहले उसकी इच्छा उसने प्रमोद के सामने व्यक्त की कि ''मैं किसी और व्यक्ति के साथ नहीं रहना चाहती। न ससुराल जाना चाहती हूँ और न मैके आना चाहती हूँ। मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ।'' यह व्यवहार में संभव नहीं था, इसलिए उसने आग्रह करना भी छोड़ दिया। एक बार मृणाल ने प्रमोद से कहा कि ''जब भी मैं तुझे बुलाऊँ, मैं किसी भी स्थिति में रहूँ, तो तुम मेरे पास आना। आओगे ?'' फिर उसने स्वयं ही इस बात को यह कहकर उड़ा दिया कि मैं तुम्हे कभी बुलाऊंगी ही नहीं। सत्रह वर्ष तक प्रमोद उससे मिलने नहीं आया और प्रमोद से मिले बिना ही मृणाल की मृत्यु हो गई। मृणाल जितना प्रमोद से प्रेम करती थी, वह अतुलनीय था। इसे स्वयं प्रमोद भी महसूस करता रहा है। मृणाल अपनी अंतिम भेंट में प्रमोद से कहती है, ''तुम्हारा प्रेम खोना मुझे असह्य होगा। अगर अब भद्र–वर्ग के लोगों में से किसी को जानती हूँ तो तुम्हें जानती हूँ। न मुझे ही अब कोई जानता है। पर तुम्हारे अकेले के कारण मैं उस तमाम भद्र–वर्ग को अप्रेम करने से बची हुई हूँ। प्रमोद, तुम नहीं जानते, अनजाने में तुम मेरी आत्मा पर यह कितना बड़ा उपकार कर रहे हो। जिस समाज में तुम हो, क्या तुम्हारे रहते मैं मन में उसके लिए तिरस्कार भी ला सकती हूँ ? कभी–कभी वह तिरस्कार मेरे मन में जोरों से उठता है, लेकिन तुम्हारे प्रेम का स्मरण करके मैं भीग जाती हूँ और मन की कटु भावना मेरे स्वास्थ्य को नष्ट नहीं कर पाती। कटुता आती है और तुम्हारे स्पर्श से मैं उसे बल बना लेती हूँ। तुम्हारा प्रेम मुझे स्वच्छ रखता है। पर डर है तुम यहाँ आओ और कहीं बचा –खुचा तुम्हारा प्रेम भी मेरे हाथों से जाता रहे। तब मेरा क्या हाल होगा।'' इसके बाद प्रमोद चला जाता है और वह सत्रह वर्ष बिना प्रमोद को देखे जीवित रही। प्रमोद के प्रति मृणाल का प्रेम, भतीजे के प्रति होने वाला निःस्वार्थ और आत्मीय प्रेम है।

प्रमोद की माँ की मृत्यु होने की जानकारी मिलने के बाद हमें मृणाल की इस अधूरी इच्छा का पता चलता है। मृणाल प्रमोद को पत्र लिखती है, ''पर मैं उन स्वर्गवासी आत्मा की सेवा नहीं कर सकी, इसकी मुझे ग्लानि है। मेरे मन में साध थी कि एक बार उनके जीतेजी उनको पाऊँगी। वह होने को न था।'' जिस प्रमोद की माँ के कारण मृणाल को जीवन भर पीड़ा भोगनी पड़ी, उनको भी वे अपनी अवस्था के प्रति जिम्मेदार नहीं ठहराती। अपितु स्वयं को ही दोष देती है। प्रमोद की माँ के प्रति कोई दुर्भावना मृणाल के मन में नहीं पनपती यद्यपि वह उन्हें 'प्रमोद की माँ' कहकर संबोधित करती है, 'भाभी' नहीं। इसी तरह उसके मन में इच्छा थी कि काश! वह प्रमोद की शादी में शामिल हो पाती। प्रमोद उसे लेने आता भी है। तब भी वह कहती है कि ''मैंने करम ही ऐसे कर रखे हैं, तो तुम्हारी शादी में कैसे आ पाती।''

8.2.2 प्रमोद

उपन्यास मृणाल की मृत्यु की खबर से प्रारम्भ होता है। बुआ की मृत्यु की खबर को जानकर प्रमोद बैचेन है। उसकी मानसिक उथल–पुथल का वर्णन जैनेन्द्र कुमार द्वारा किया गया है। उपन्यास का कथावाचक प्रमोद, जो वास्तव में सर एम. दयाल है, जजी से 'त्याग–पत्र' दे देता है। यह 'त्याग–पत्र' उस पश्चाताप का परिणाम है, जिसमें मृणाल के जीवित रहते हुए उसने अपने कर्तव्य का उचित पालन नहीं किया। उसे अभी–अभी बुआ के

BHDC-109_4th proof.indd 153 8/6/2021 2:09:09 PM

(मृणाल) मरने की खबर आई है ''मुझको नहीं मालूम वह कैसे मरी ? घुल–घुल कर मरी, इतना तो जानता हूँ। इतना तो उनकी मौत के दसियों वर्ष पहले से जानता था। फिर भी जानना चाहता हूँ कि अंत समय क्या उन्होंने अपने इस भतीजे को याद किया था ? याद किया होगा, यह अनुमान करके रौंगटे खड़े हो जाते हैं।'' इस कारुणिक पृष्ठभूमि में मृणाल और प्रमोद की कथा चलती है और इस कथा के माध्यम से दोनों का चरित्र उद्‌घाटित होता चलता है।

उपन्यास का कथावाचक

प्रमोद इस उपन्यास का कथावाचक है। वह उपन्यास के पाठकों को मृणाल के जीवन की कहानी कहता है। कथा कहने की इस प्रक्रिया में उसका अपना व्यक्तित्व भी अभिव्यक्त होता जाता है। उपन्यास में प्रमोद का आगमन उसके बचपन से हो जाता है। उसे दुनियादारी और छल –प्रपंच की कोई समझ नहीं है। फिर भी वह समझ जाता है कि उसके पिता बुआ से बहुत प्यार करते हैं। शुरू में तो माँ भी बुआ को अपना मानती है, लेकिन जब उसे पता चलता है कि बुआ के (मृणाल) सम्बन्ध शीला के भाई से हो गए हैं, तब से वह उसको नापसंद करने लगती है। सामाजिक मर्यादा के दबाव से या माँ के प्रभाव से प्रमोद के पिता भी मृणाल से दूरी बना लेते हैं। इसको महसूस करके संवेदनशील प्रमोद, अपनी बुआ से जुड़ता चला जाता है। बिना बताये, पाठक स्वतः ही जान जाते हैं कि मृणाल की पीड़ा का कारण उसका पीहर है, जो है भी और नहीं भी। धीरे–धीरे प्रमोद के मन में अपराध बोध जागृत होने लगता है। उसको लगता है कि उसे बुआ के साथ खड़ा होना चाहिए, लेकिन अपने माता–पिता के विरुद्ध जाकर बुआ का पक्ष नहीं ले पाता।

प्रमोद की माँ जब पहली बार मृणाल को बेंत से पीटती है, तब वह बेंत प्रमोद लाकर देता है। उस समय उसके मन में निष्क्रिय संवेदना जागृत होकर रह जाती है। उसे भी कुछ करना चाहिए, उसका भी कुछ दायित्व है, वह यह नहीं सोच पाता। हालाँकि वह बुआ का कहना मानता है। उसके कहने से वह शीला के घर चला जाता है। शीला के भाई को बुआ की चिठ्ठी दे देता है। जब बुआ जमालघोटा मँगाती है, तो वह भी उसे लाकर दे देता है। बुआ के लिए वह विश्वसनीय भतीजा बना रहता है। बुआ की कोई बात वह घरवालों को नहीं बताता। वह यह जानता है कि उसके माँ–पिता और बुआ अलग–अलग हैं। इतना जानते–समझते हुए भी वह अपना कोई नुकसान करके बुआ के पक्ष में खड़ा नहीं होता। मृणाल जब अपने पति का घर छोड़कर कहीं चली जाती है, तब माँ उसे बुआ से संपर्क न रखने की हिदायत देती है, तो वह कुछ दिन के लिए उसे मान लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि माँ और बुआ के बीच चुनाव में वह माँ को चुनता है। यहीं से उसके मन में अपराध बोध जन्म लेने लगता है। जब वह बड़ा होता है, तब उसका यह अपराध बोध भी बढ़ता जाता है क्योंकि उसका संवेदनशील हृदय बुआ के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी उसकी साथ नहीं दे पाता।

पहली बार जब माँ ने बुआ को बेंत से मारा, तब प्रमोद ने उसे छुड़ाने का कोई प्रयास नहीं किया। बाद में प्रमोद उसके कमरे में जाकर देखता है, ''बुआ औंधी पड़ी हुई है।'' उसको स्वयं महसूस हुआ– ''मुझ से कुछ भी नहीं बोला गया। बुआ के गले से लगकर मैं वहाँ थोड़ा–सा रो लेता तो ठीक होता। पर वह संभव न हुआ।'' यही प्रमोद की निष्क्रिय संवेदना है और इसका गहरा सम्बन्ध अपराध बोध से है। हालाँकि प्रमोद सोचता है, ''यह प्रमोद बड़ा होकर खूब कमाएगा और तुम्हारी (बुआ की) खूब सेवा करेगा और तुम्हे कुछ कष्ट न होने देगा।'' प्रमोद बड़ा बनता है खूब कमाता भी है। तब भी वह मृणाल को अपने घर नहीं ला पाता और आगे चलकर अपराध–बोध से ग्रस्त रहता है।

''मैं चाहने लगा कि बुआ को अपनी गोद में ले लेता और धीमे–धीमे उनके माथे पर थपकी देकर कहता –वह सब भूल जाओ बुआ। बुरा –खराब सब भूल जाओ। वह भी जगह है जहाँ कोई खराब नहीं है और जहाँ कोई बेंत नहीं है। हम दोनों वहीं चलकर

BHDC-109_4th proof.indd 154 8/6/2021 2:09:09 PM

रहेंगे। वह सोचता हुआ मैं बुआ की छाती में चिपका रहा।'' और प्रमोद इतनी सी बात भी बुआ को कहकर उसे सांत्वना नहीं दे पाता। ऐसा करना तो बहुत दूर की बात है।

मृणाल बार–बार हृदय से स्वीकार करती है और प्रमोद भी जानता है कि मृणाल उससे बेहद प्यार करती है। प्रमोद एकांत में सोचता है, ''जो प्रेम उनसे मुझे प्राप्त हुआ था, वह क्या किसी भी भाँति भूला जा सकता है और क्या स्वयं में इतना पवित्र नहीं है कि स्वर्ग के द्वार उसके समक्ष खुल जाएँ।'' इसी के साथ प्रमोद यह भी स्वीकार करता है कि ''मैं हृदय–हीन न हो सका, होता तो आज कामयाब वकील बनने के बाद जजी की कुर्सी में बैठना भी मेरे नसीब में न होता।''

हालाँकि माँ के स्पष्ट मना करने के बावजूद प्रमोद मृणाल के संपर्क में रहा। जब मृणाल पति के घर से निकल कर कोइले वाले के साथ रहने लगी, तब उसका पता –ठिकाना पूछकर उससे मिलने गया। प्रमोद कोशिश करता है और कई बार कोशिश करता है कि वह मृणाल को इस पीड़ादायक जगह से निकाल कर अपने घर ले जाए, परन्तु वह सफल नहीं हो पाता। वह सोचता है, ''बुआ घर नहीं चलेंगी। देख लिया, मैं उन्हें घर नहीं ले जा सकता हूँ। मैं उन्हें उनकी राह से क्या एक पग भी इधर–उधर नहीं कर सकूँगा। वह मुझे कुछ नहीं करने देगी। उनकी मति उलट गई है। वह नहीं सुधरना चाहती। तब मैं उन्हें क्या सुधारूं ? और तो और, मुझे इसी में शंका होने लगी कि सुधार की जरूरत उनमें है कि मुझमें है। यह शंका असह्य थी। ''

मृणाल अधिक पढ़ी–लिखी नहीं है। वह नादान भी है, जबकि प्रमोद अधिक पढ़ा–लिखा है, वकील है। वकील बनने के बाद वह एक बार मृणाल से मिलने भी गया था। उनके बीच जीवन–जगत की चर्चा होती है। इस चर्चा में हर बार यही प्रमाणित होता है कि मृणाल अधिक समझदार है। वह चीजों को अधिक यथार्थ और तार्किक ढंग से जानती–समझती है। उसकी तुलना में हर बार प्रमोद 'बच्चा' प्रमाणित हो जाता है। इस कारण प्रमोद भी सोचता है कि ''मुझे निश्चय हो गया कि सचमुच जो शास्त्र से नहीं मिलता, वह ज्ञान आत्मव्यथा से मिल जाता है। नहीं तो इतने गंभीर जीवन–तथ्य को इस स्वाभाविकता से वश में करने और व्यक्त करने के बुआ के अधिकार का और भेद क्या हो सकता है।''

मृणाल कभी भी प्रमोद को भावनात्मक संकट में नहीं डालना चाहती। इसलिए सारी जिम्मेदारी वह अपने ऊपर ले लेती है। प्रमोद ने जब घर चलने का आग्रह अधिक जोर देकर किया तो मृणाल ने उससे पूछा कि माँ ने मेरे आने के बारे में कहा था ? इस का कोई उत्तर प्रमोद के पास नहीं था। फिर वह नया तर्क खोजती है ताकि प्रमोद को आत्मग्लानि न हो। ''पहले घर बसा लो। विवाह कर लो। फिर चलने की बात करते हैं।'' प्रमोद के कारण एक बार मृणाल को निराश्रित होकर 'सड़ाँद' में रहने के लिए विवश होना पड़ता है। यह स्थिति कुछ इस प्रकार अंकित है कि मृणाल डॉक्टर के घर पर बच्चों को पढ़ाती है। घर का कामकाज भी करती है। इतने में प्रमोद वहाँ आ जाता है। डॉक्टर की बेटी से प्रमोद के विवाह की बातचीत चलती है। प्रमोद इस परिवार को बताना चाहता है कि ''तुम मेरी बुआ हो।'' मृणाल जोर देकर इसे मना करती है। तर्क करती है। लेकिन प्रमोद कहता है, ''मैं छल नहीं कर सकता। यह जीवन भर का सम्बन्ध है। क्या झूठ पर खड़ा करूँ ?'' बुआ कहती है कि, ''झूठ तो, भाई, आज यह है कि मैं तेरी कोई भी हूँ। बता, मैं आज तेरी क्या हूँ ? कभी यह सत्य था कि मैं तेरी बुआ थी, पर उस बात को तो मैंने अपने हाथों से अच्छी तरह तोड़–मरोड़ कर धूल में पटक दिया है। ..... प्रमोद, मुझे मेरे भाग्य पर छोड़, जा, जा, अब भी यहाँ मत ठहर।'' प्रमोद सत्यता की दुहाई देते हुए मृणाल की बात नहीं मानता। इसका फल होता है कि मृणाल को इस घर से निकलना पड़ता है और वह बड़ी बुरी हालत में जाकर रहने को मजबूर हो जाती है। इसके बावजूद मृणाल ने प्रमोद को दोषी नहीं माना, परन्तु प्रमोद तो जानता है कि उसके कारण बुआ का यह काम छूटा जिसके चलते उसे निराश्रित होकर 'खराब जगह' में रहने को विवश होना पड़ा।

BHDC-109_4th proof.indd 155 8/6/2021 2:09:09 PM

मृणाल ने जीवन भर प्रमोद से कभी कुछ नहीं माँगा। अंतिम बार बुआ ने प्रमोद से कहा कि तुम जितना दे सको, वह मुझे दे दो। इन पैसों से मैं अपने साथ रहने वालों की सहायता करना चाहूँगी। प्रमोद ने ये रुपये मृणाल को नहीं दिए तथा इसके बाद वह उनसे मिलने भी नहीं गया। स्वयं पश्चाताप में प्रमोद सोचता है, ''पर क्यों ? क्यों बुआ की मांग मुझ से पूरी नहीं हुई ? उन्होंने इतना प्रेम किया, इतना विश्वास किया और जब एक सवाल मुझ से किया तब उसके जवाब में अपना धन मुझसे क्यों नहीं वहां डाला गया ? क्यों मेरी मुट्ठी भिंच गई ? वह भी हुआ तो फिर क्यों उसके बाद मेरी आत्मा ताप से संतप्त नहीं रही ? क्यों ? क्यों ?'' इसका उत्तर मृणाल की मृत्यु के बाद प्रमोद देता है कि ''मैं बुद्धिमान था, मूर्ख नहीं था। तोल–तोलकर चला और तराजू अपने हाथ में रखी। ''

उस बात को सत्रह से अधिक वर्ष बीत गए। "आज महाश्चर्य और महासंताप का विषय मेरे लिए यह है कि किस अमानुषिकता के साथ मैं ये सत्रह वर्ष बुआ को बिना देखे काट गया ! वह बुआ जिन्होंने बिना लिए दिया। जिन्होंने कुछ किया, मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद मेरे भीतर अँगार –सी जलती है। जिनका जीवन ऊपर उठती लौ की भाँति जलता रहा। धुआं उठा तो उठा पर लौ प्रकाशित रही। उन्ही बुआ को एक तरफ डालकर मैं किस भांति अपनी प्रतारणा करता रहा।'' इसी पश्चाताप में प्रमोद ने यह उपन्यास लिखा और अपने जज के पद से त्यागपत्र दे दिया।

बोध प्रश्न–1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग दो से तीन पंक्तियों में दीजिए:

   क) किस पात्र के मरने के बाद मृणाल सोचती है कि ''काश ! मैं उनसे जीतेजी एक बार क्षमा मांग लेती''।

   .....

   .....

   .....

   ख) 'त्याग–पत्र ' उपन्यास में त्यागपत्र कौन देता है।

   .....

   .....

   ग) पति के घर से निकलकर मृणाल कहाँ रहती है ?

   .....

   .....

2. सही / गलत पर निशान पर लगाएँ।

   क) 'त्याग–पत्र ' का कथावाचक प्रमोद है। (सही / गलत)

   ख) अपने मैके में मृणाल की कभी बेंत से पिटाई नहीं हुई। (सही / गलत)

   ग) जीवन के अंतिम सत्रह वर्षों तक मृणाल ने प्रमोद को कभी नहीं देखा। (सही / गलत)

8.3 ''त्याग–पत्र'' के सहायक पात्र

8.3.1 प्रमोद के पिता

उपन्यास में मृणाल के माता–पिता का देहान्त हो चुका है। इसलिए वह अपने भाई–भाभी के साथ रहती है। मृणाल का भाई, जो प्रमोद का पिता है, अपनी बहन से बहुत प्यार

BHDC-109_4th proof.indd 156 8/6/2021 2:09:09 PM

करता है। उसकी शिक्षा –दीक्षा का प्रबंध करता है। मृणाल का जब शीला के भाई से सम्बन्ध हो जाता है, तब वह मृणाल से थोड़ा खिंचा–खिंचा रहता है। प्रमोद की माँ जब मृणाल के प्रति कठोर व्यवहार करने लगती है, तब वह तटस्थ होकर अपनी पत्नी का समर्थन करता है। मृणाल के अपने भाई से भावनात्मक सम्बन्ध हैं। इसलिए जब भी उसे कुछ कहना होता है तो वह अपने भाई से कहती है। एक बार मृणाल अपनी ससुराल से पति को बिना बताए घर आ जाती है तो भाई उससे इस संदर्भ में चर्चा करता है। वह मृणाल को पुनः उसकी ससुराल में स्थापित करना चाहता है। हालाँकि वह उसमें सफल नहीं होता। उसे लगता है कि मृणाल ने गलती की है, अतः वह मृणाल के पति से क्षमा–प्रार्थी की मुद्रा में बात करता है और यह वचन देता है कि अब यदि मृणाल बिना पति को बताए हुए मैके आ जाती है तो भाई उसे घर में नहीं आने देगा।

पति से प्रताड़ित होकर मैके आने के बाद जब मृणाल को वापिस पति के पास भेजने का अवसर आता है, तब मृणाल अपने भाई से कहती है, ''मैं अभी जाना नहीं चाहती हूँ।'' इस पर उसका भाई व्यावहारिक उत्तर देते हुए कहता हैं, ''जाना नहीं चाहती हो, यह तो मैं देखता हूँ। पर भला ऐसा कहीं होता है। और कब तक नहीं जाओगी ?''

''बिलकुल नहीं जाऊँगी। ''

बाबू जी ने कुछ चौंककर कहा, ''तो क्या करोगी ?''

''आप यहाँ से निकाल देंगे तो यहाँ से भी निकल जाऊँगी।''

बाबू जी को इस पर रोष हो आया। बोले –– ''कहाँ निकल जाओगी ?''

''पिताजी मुझे नन्हीं छोड़ जहाँ चले गए हैं, कोई राह बता दे तो मैं वहीँ जाना चाहती हूँ।'' इसके बाद भी वे अपनी बहन को अपने पास नहीं रख सके। फिर मृणाल का जो हश्र होना था, वह हुआ। प्रमोद के वर्णन के अनुसार प्रमोद के पिता असहाय हो गए थे। वे चाहकर भी उसकी कुछ मदद नहीं कर पा रहे थे। परन्तु पूरी स्थिति के देखने के बाद यही लगता है कि सामाजिक–व्यवस्था का डर उन्हें मृणाल को अपने पास रखने से रोकता है।

8.3.2 प्रमोद की माँ

प्रमोद ने अपनी माँ का वर्णन बड़ी तटस्थता से किया है। प्रमोद के पिता अपनी बहन से बहुत प्यार करते थे। ''पिताजी का यह स्नेह उन्हें बिगाड़ न दे, इस बात का मेरी माता को खासा ख्याल रहता था। वह अपने अनुशासन में सावधान थीं। मेरी बुआ को कम प्रेम करती थी, यह तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता। पर आर्यगृहिणी का जो उनके मन में आदर्श था, मेरी बुआ को ठीक उसी के अनुरूप ढालना चाहती थीं।'' वह जब नहीं हुआ और मृणाल उनके आदर्शों से च्युत हो गई तो प्रमोद की माँ के आदर्शों को धक्का लगा। वह मृणाल के प्रति असंवेदनशील हो गईं और उसने कमरा बंद कर के मृणाल की बेंत से जोरदार पिटाई की। उनके बारे में प्रमोद की टिप्पणी थी, ''माता अत्यंत कुशल गृहणी थी। जैसे कुशल थी वैसी कोमल भी होती तो ..... ?'' मृणाल को पीटकर वह खुश नहीं हुई। उसे कष्ट हुआ। मृणाल को बेंत से पीटने के बाद ''माँ दरवाजा खोलकर बाहर आई। उनके होंठ नीले थे और जिस हाथ में बेंत था वह काँप रहा था। उनका चेहरा मानो राख से पुत गया था। ऐसा लगता था कि माँ अगले क्षण अपने को ही बेंत से न उधेड़ने लगे। मानो अपने को नहीं मार रही है, तो उन पर बहुत जोर पड़ रहा है। वह मेरे सामने से होकर कमरे में चली गई। जाते –जाते द्वार पर रुकी और जोर से अपने हाथ की बेंत को दालान में फेंक दिया।''

अब मृणाल के जीवन को एक दिशा देनी थी। उसकी शादी करनी थी। ''माँ ने जल्दी–जल्दी तत्परता के साथ सब व्यवस्था कर दी।'' इसके पांच–छः महीने के बाद मृणाल की शादी कर दी गई। जिनसे शादी की, वे उम्र में मृणाल से बहुत बड़े थे।

BHDC-109_4th proof.indd 157 8/6/2021 2:09:09 PM

प्रमोद की माँ यौन–शुचिता और पितृसत्ता की जबरदस्त समर्थक थी। इन मान्यताओं पर खरा उतरने पर ही कोई उनका प्यार पा सकता है। मृणाल ने इन मर्यादाओं का उल्लंघन किया या उससे उल्लंघन हो गया, इसलिए माँ के मन में मृणाल के लिए कोई सहानुभूति नहीं थी। प्रमोद हमेशा माँ के अनुशासन में रहा। बुआ ने कभी भी उसे माँ के विरुद्ध होने की प्रेरणा नहीं दी। प्रमोद की माँ की यह छाया सारे उपन्यास में और मृणाल के संपूर्ण जीवन में रहती है। मृणाल हमेशा उन्हें प्रमोद की माँ के सम्बोधन से पुकार कर प्रमोद और उसकी माँ के रिश्ते को प्रगाढ़ करती रहती है। विवाह के अवसर पर माँ बेचैन रहती है लेकिन कभी ''बुआ से सीधी बात माँ कुछ नहीं कहती।'' यह उनका अपना अपराध –बोध हो सकता है। प्रमोद ने लक्षित किया कि बुआ जब ससुराल जा रही थी तब ''उनका मुंह सूखा था।'' इसी तरह जमालघोटा पीने के बाद जब मृणाल की तबियत खराब हुई तो ''माता–पिता दोनों चिंतित हो गए।'' ये छोटी–छोटी घटनाएँ यद्यपि मृणाल के प्रति प्रमोद की माँ के स्नेह की अभिव्यक्ति करती हैं।

ससुराल के लिए रवाना होते समय मृणाल माँ के पैर छूकर रोती हुई उनके सामने खड़ी हो गई, बोली कुछ भी नहीं। माँ ने द्रवित भाव से उन्हें अपने कंठ से लगाकर कहा, ''मिनी, मैं तुझे जल्दी बुलाऊंगी। वहां अपनी गृहस्ती अच्छी तरह संभालना और पति को सुखी करना मिनी ! माँ ने गद्‌गद कंठ से भाँति–भाँति के आशीर्वचन कहे। बुआ मस्तक झुकाकर मानो सब झेलती रही। पतिव्रता रहने, पूतों फलने, बड़भागिन होने आदि के आशीर्वाद उन्होंने ऐसे प्रणत भाव से लिए कि मानों उनके नीचे वह गड़कर मर भी जाये तो धन्य हो जाये। नहीं तो..... नहीं तो.....।'' बाद में जब यह जानकारी मिली कि मृणाल अपने पति के घर से कहीं चली गई, तब प्रमोद ने माँ से बुआ के बारे में पूछा। उस समय अत्यंत क्रोध और पीड़ा से माँ ने कहा कि ''जा, तेरी बुआ मर गई ! हाँ तो ! खबरदार जो अब बुआ की बात मुझसे की।'' कोइले वाले के यहाँ प्रमोद मृणाल से मिलने जाता है। वापिस आकर वह माँ को बताता है तो ''माँ ने कहा–तू जो चाहे कर। पर खबरदार जो मुझसे उसकी बात कही ..... कुल–बोरन कहीं की'' इसके बाद मृणाल को माँ की मृत्यु की सूचना मिलती है तो मृणाल कहती है, ''मेरे मन में साध थी कि एक बार उनके जीतेजी उनकी क्षमा पाऊंगी।'' जो उसे नहीं मिली। यह कसक मृणाल के मन में अंत तक रही।

8.3.3 शीला और उसका भाई

शीला मृणाल की सहपाठी थी। वह शरारती और चुलबुली है। उपन्यास के प्रारंभ में एक घटना का ज़िक्र है, जिसमें शीला अपने शिक्षक की कुर्सी पर पिन चुभो देती है। मृणाल ने इस गलती को स्वयं पर लेकर उसका दंड सहन किया। वह उसके घर आती–जाती थी। यहाँ उसके भाई ने मृणाल से शारीरिक सम्बन्ध बना लिए। उपन्यास में शीला के भाई का नाम नहीं आता। वह केवल शीला के भाई के रूप में आता है। जब प्रमोद की माँ को इस सम्बन्ध का पता चलता है तो माँ मृणाल की 'बेंत से पिटाई' करती है। मृणाल के जीवन की पीड़ा का एक कारण शीला का भाई है। हालाँकि जैनेन्द्र कुमार ने इसे खाल पात्र के रूप में चित्रित नहीं किया है। एक बार मृणाल के कहने से प्रमोद उससे मिलने भी जाता है। वह प्रमोद को भी अच्छा लगता है।

मृणाल जब ससुराल में होती है, तब शीला का भाई उसे पत्र लिखता है। वह लिखता है, ''मैं अब सिविल सर्जन हूँ। शादी नहीं हुई है, न करूंगा। तुम्हारा विवाह हो गया है, तुम सुखी रहो। मेरे लायक कुछ सेवा हो तो लिख सकती हो।'' इसके उत्तर में मृणाल ने लिखा, ''आपके पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ, पर आईंदा आप कोई पत्र न भेंजे। मैं सुखी होने की कोशिश कर रही हूँ।'' मृणाल निष्छल रूप से ये दोनों पत्र अपने पति को दिखा देती है और इस कारण मृणाल का पति उसे दुश्चरित्रा मानकर घर से निकाल देता है। यद्यपि शीला का भाई मृणाल के साथ अपने संबंधों में ईमानदार और समर्पित दिखाई देता है परंतु, मृणाल के साथ संबंध आगे बढ़ाने या इस संदर्भ में कोई उचित कदम उठाने का प्रयास नहीं करता। एक कमजोर चरित्र के रूप में सामने आता है।

BHDC-109_4th proof.indd 158 8/6/2021 2:09:09 PM

8.3.4 मृणाल का पति

'त्याग–पत्र' में मृणाल के पति का भी कोई नाम नहीं है। इनका जो परिचय दिया गया है, उसके अनुसार वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं तथा मृणाल से उम्र में बहुत बड़े हैं। अपने व्यवहार में वे संवेदनशील नहीं दिखते। अपने विचारों को प्रकट करते हुए वे मृणाल के भाई को कहते हैं, ''आपने इन्हें समझा तो दिया ही होगा। जरा सेहत का ख्याल रक्खा करें। और दुनिया का भी जरा लेहाज रखना चाहिए। आप जानिए, बहू–बेटियों की चलन की रीति–नीति हुआ करती है। अपने तो वही पुराने अकीदें हैं। अपना कुल–शील चला आता है, वह न निभा तो फिर क्या रह गया।'' मृणाल के पति को जब मृणाल की ईमानदारी और पति से कुछ न छिपाने की भावना के चलते शीला के भाई से मृणाल के रिश्ते का पता चलता है तो वे मृणाल से दूर होते जाते हैं। हालाँकि इससे पहले मृणाल प्रमोद को बता देती है कि वे मृणाल को 'बेंत से पीटते' हैं। क्यों ? क्योंकि वे मृणाल को 'दुश्चरित्रा' मानते हैं। जब मृणाल उनका घर छोड़ती है, तब वे चाहते हैं कि मृणाल अपने पीहर चली जाए। जब मृणाल राजी नहीं होती तब उसे वे शहर में एक कोठरी में रख देते हैं। इसके बाद उपन्यास में ये कभी उपस्थित नहीं होते और न ही पत्नी के प्रति कोई संवेदनशीलता दिखाते हैं।

8.3.5 कोयले वाला

पति के घर से निकलने के बाद मृणाल इस कोइले वाले बनिए के साथ रहने लगती है। प्रमोद के मिलने के बाद मृणाल इस कोइले वाले की पूरी कहानी बताती है। मृणाल बताती है कि "भूख के तीसरे रोज इस आदमी ने खतरा उठाकर मृणाल की सहायता की।" इसलिए मृणाल को दूसरा आदमी होते हुए भी वह 'अन्य पुरुष 'नहीं लगता। जब तक उसके साथ रहती है, मृणाल उसका पूरा ध्यान रखती है।''उसका परिवार था, मेल–जोली थे। उनकी ओर से लापरवाह होकर, ताने और धमकी सहकर पहले चोरी फिर उजागर, उसने मुझे सहायता दी। उसकी चोरी में मेरा भाग न था। और सहायता और कुछ नहीं–यही कि कोइला ला दिया, सीधा लाकर रख दिया और ढारस की दो–एक बातें कह दीं।'' इस आदमी की सहायता और प्रेम को स्वीकार करने के अलावा मृणाल के पास कोई विकल्प नहीं था। इसमें मृणाल के रूप–सौंदर्य की भी भूमिका थी और वह उसपर मुग्ध हो गया था। हालाँकि मृणाल जानती थी और उसने प्रमोद को भी कहा था कि, ''इस आदमी को अब मुझसे विरक्ति हो रही है और अपने परिवार की याद आ रही है। जब सबको छोड़कर मुझे साथ ले चलने को उतावला था, तब भी मैं जानती थी कि थोड़े दिनों बाद इसे लौटकर अपने परिवार के बीच आ जाना होगा। जानती थी इसी अवश अनुरक्ति में से एक दिन विरक्ति का भाव फूटेगा। '' इसलिए ''जब तक पास है, तब तक वह पुरुष अन्य नहीं है। मेरा सब कुछ उसका है। उसकी सेवा में त्रुटि नहीं कर सकती। पतिव्रत धर्म यही तो कहता है।'' अगली बार प्रमोद जब यहाँ आता है और इनके बारे में पूछताछ करता है, तब उसे पता चलता है कि वह आदमी ''काफी दिन का यहाँ से उठ गया है, अपनी औरत को पीट–पाट कर भाग गया है।'' मृणाल इसी के बच्चे की माँ बनने वाली है। किसी तरह वह मिशन के अस्पताल में जाती है। वहाँ मिशन के लोग मृणाल को आश्वासन देते हैं कि यदि वह इस बच्ची को मिशन को सौंप दे तो मिशन उसके लालन–पालन की व्यवस्था कर देगा तथा वह स्वयं भी ईसा–मसीह में आस्था प्रकट करे, तो वह सुखी जीवन जी सकती है। मृणाल उनके प्रस्ताव को नहीं मानती। वह एक डॉक्टर के घर जाकर कार्य करने लगती है। संयोग से उसी घर में प्रमोद के विवाह की चर्चा चलती है। बुआ का परिचय उजागर होता है तथा प्रमोद का विवाह टूट जाता है और मृणाल को यहाँ से भी जाना होता है।

बोध प्रश्न–2

3. उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

   (क) अपने स्कूल के दिनों में मृणाल ने ..... के बदले में मार खाई।

BHDC-109_4th proof.indd 159 8/6/2021 2:09:09 PM

(ख) प्रमोद का विवाह ..... से होने वाला था, जो मृणाल के कारण नहीं हो पाया।

(ग) शीला का भाई पढाई के बाद ..... बन गया।

4. शीला के भाई की चारित्रिक विशेषता बताइए। (दो–तीन पंक्तियों में)

.....

.....

.....

8.4 सारांश

'त्याग–पत्र' की प्रमुख पात्र मृणाल है। इस मृणाल की कहानी उसका भतीजा प्रमोद सुनाता है। इसलिए प्रमोद इस उपन्यास का कथा–वाचक है। बुआ मृणाल की पीड़ा का वर्णन करते हुए वह उसके जीवन की कहानी कहता चलता है। मृणाल की पीड़ा का पहला कारण प्रमोद की माँ के विचार हैं। वे मृणाल को आदर्श आर्य महिला बनाना चाहतीं थीं, लेकिन शीला के भाई से शारीरिक सम्बन्ध हो जाने के बाद प्रमोद की माँ उससे नाराज रहने लगती है। फिर जल्दी–जल्दी उसका विवाह कर दिया जाता है। वह अपने पति को शीला के भाई के बारे में बताती है। इसे सुनकर पति नाराज हो जाता है और उसे घर से निकाल देता है। यहाँ से वह एक कोइले वाले के साथ रहने लगती है। थोड़े दिनों बाद यह कोइले वाला भी उसे छोड़कर चला जाता है। फिर वह मिशन अस्पताल के माध्यम से डॉक्टर के घर घरेलू सहायक का काम करने लगती है। डॉक्टर की बेटी से प्रमोद के विवाह की चर्चा होती है। प्रमोद जब यह बताता है कि यह मृणाल उसकी बुआ है। यह जानकर उसका यह काम भी छूट जाता है और वह समाज के निकृष्ट श्रेणी के लोगों के पास चली जाती है।

प्रमोद बुआ को प्यार करता है लेकिन उसकी सहानुभूति निष्क्रिय रहती है। वह बुआ से मिलने जाता रहता है परन्तु कभी भी उसे अपने घर नहीं ले जा पाता। प्रमोद के मन में पश्चाताप होता है। एक बार बुआ उससे अपने साथ रहने वाले लोगों के लिए रुपए मांगती है, जिसे प्रमोद नहीं दे पाता और बुआ को अकेली छोड़कर चला जाता है। मृणाल किसी तरह अपना सत्रह वर्ष से अधिक जीवन गुजार देती है। मृणाल के मरने की खबर सुनकर प्रमोद के मन में पश्चाताप के भाव आते हैं और वह अपने जजी के पद से त्यागपत्र देकर हरिद्वार चला जाता है। इन प्रमुख पात्रों के अलावा पात्र के रूप में प्रमोद के माता–पिता, शीला और उसका भाई, मृणाल का पति, कोइले वाला आदि सहायक पात्र आते हैं। इन सबका वर्णन जैनेन्द्र कुमार ने मृणाल के संदर्भ में बारीकी से किया है।

8.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. (क) उत्तर के लिए 8.2 देखें।

   (ख) प्रमोद

   (ग) कोयले वाले के घर।

2. (क) सही (ख) गलत (ग) गलत

बोध प्रश्न–2

3. (क) शीला (ख) राजनंदिनी (ग) सिविलसर्जन।

4. उत्तर के लिए 8.3 देखें।

BHDC-109_4th proof.indd 160 8/6/2021 2:09:09 PM

इकाई 9 अमृतलाल नागर और उनके उपन्यास

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 अमृतलाल नागर का परिचय

9.2.1 जीवन परिचय

9.2.2 साहित्य रचना

9.3 अमृतलाल नागर के प्रमुख उपन्यासों का परिचय

9.4 अमृतलाल नागर का महत्त्व

9.5 सारांश

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम प्रसिद्ध उपन्यासकार–कथाकार अमृतलाल नागर के व्यक्तित्व और कृतित्व को जान सकेंगे। इस इकाई में अमृतलाल नागर के जीवन के विविध पड़ावों से गुजरते हुए उनके रचनात्मक अवदान पर विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा। साहित्य के क्षेत्र में विविध विधाओं में उनकी लेखकीय कृतियों को बताने के साथ ही इस इकाई के अध्ययन से आप उनके प्रचुर उपन्यास साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अमृतलाल नागर को जीवन की गति और व्यापक अनुभव ने एक साहित्यकार बनाया, इसे बता सकेंगे;
- कथा के अतिरिक्त अमृतलाल नागर के नाटक, व्यंग्य, बाल साहित्य आदि कृतियों का परिचय दे सकेंगे;
- अमृतलाल नागर द्वारा रचे उपन्यासों की संक्षिप्त कथा–भूमि और विशेषताओं की चर्चा कर सकेंगे; और
- अमृतलाल नागर के महत्व की जानकारी दे सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

साहित्य समाज के विभिन्न ज्ञानानुशासनों में स्वतंत्र आवाजाही करने वाली शक्ति है। समाज की सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक धाराओं से पोषित और पल्लवित यह शक्ति मनुष्य और समाज को नयी दृष्टि से लैस करती है। हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण कथाकार अमृतलाल नागर ने जीवन–समाज के अनेक पक्षों का गहन दृष्टि से अवलोकन किया और कथा के रूप में उसे अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा लिखे गए अनेक उपन्यास विविध विषय भूमियों को स्पर्श करते हैं और अपने रचनात्मक विवेक से पाठकों से संवाद भी करते हैं। इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र में उनकी गहरी रुचि और बहुज्ञता ने उनके कथाकार रूप को समृद्ध किया है। उनके द्वारा लिखे गए उपन्यासों पर बात करते हुए इस महत्वपूर्ण बिन्दु को स्पष्ट किया जाएगा। नागर जी ने कथा के अतिरिक्त नाटक, व्यंग्य आदि विधाओं में भी लेखन किया है। उनके साहित्यिक परिचय को जानकर ही न सिर्फ लेखक की रचनात्मक विकास यात्रा को जाना जा सकता है वरन कथा के क्षेत्र में उनकी विषयगत विविधता और कथा में

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

नाटकीय स्थितियों के निर्वाह और व्यंग्यात्मकता के ताने–बाने को भी परखा जा सकता है। उनके उपन्यास ब्रिटिश साम्राज्य के अन्यायी पक्ष को सामने लाते हैं और आजादी के बाद के युग यथार्थ से भी जुड़ते हैं।

9.2 अमृतलाल नागर का परिचय

9.2.1 जीवन परिचय

अमृतलाल नागर का जन्म 17 अगस्त 1916 ई. को गोकुलपुरा (उत्तर प्रदेश) में गुजराती ब्राह्मण परिवार में हुआ। पिता का नाम राजाराम नागर और माता का नाम विद्यावती नागर था। बाल्यकाल से ही अपने समाज में चल रही राजनीतिक–सामाजिक हलचलों से अछूते न थे। आज़ादी के आंदोलन में संघर्ष कर रहे स्वाधीनता सेनानियों के सम्पर्क में वे आ चुके थे। कांग्रेस के सबसे युवा संगठन वानर सेना के वे सक्रिय सहभागी बन गए थे। साइमन कमीशन का विरोध हो या फिर विदेशी वस्त्रों की होली जलाना हो या क्रांतिकारियों तक संदेश पहुँचाना हो, सभी में नागर जी ने बढ़चढ़ कर भाग लिया।

हाईस्कूल की विधिवत शिक्षा के पश्चात इतिहास, पुरातत्व और समाजशास्त्र का अध्ययन किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी अमृतलाल नागर बहुभाषी भी थे। उनका गुजराती, मराठी, बंगला और अंग्रेजी पर अधिकार था। 31 जनवरी 1932 ई. को नागर जी का विवाह प्रतिभा से हुआ। उनके चार संतानें हुईं, जिनके नाम हैं–कुमुद नागर, शरद नागर, अचला नागर और श्रीमती आरती पंड्या।

अमृतलाल नागर को परिवार से एक ऐसा सांस्कृतिक वातावरण मिला कि साहित्य की ओर उनकी रुचि सहज ही हो गई। उनका पहला कहानी संग्रह 'वाटिका' नाम से सन् 1935 में ही प्रकाशित हो गया था। युवावस्था में अमृतलाल नागर ने स्वतंत्र रूप से लेखक और पत्रकार के रूप में कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1940 से 1947 ई तक कोल्हापुर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'चकल्लस' का सम्पादन किया। हिंदी सिनेमा में कार्य करने के लिए अमृतलाल नागर ने लेखन किया। इसके पश्चात 1953 ई. से मई 1956 ई. की अवधि में नागर जी ने ऑल इंडिया रेडियो पर ड्रामा प्रोड्यूसर के रूप में कार्य भी किया। उस समय ऑल इंडिया रेडियो के सलाहकार मंडल में हिंदी साहित्य के भगवतीचरण वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, उदयशंकर भट्ट, और पंडित नरेंद्र शर्मा जैसे महत्त्वपूर्ण साहित्यकार शामिल थे। आज़ादी के पहले दशक में नए बनते हुए भारत के लिए अनेक कार्यक्रम बनाने के बाद स्वतंत्र लेखन को प्राथमिकता देने के लिए नागर जी ने रेडियो से अवकाश ले लिया। उसके बाद निरंतर साहित्य रचना को अमृतलाल नागर ने अपना लक्ष्य बना लिया।

हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाले अमृतलाल नागर जी का निधन 23 फरवरी 1990 को हो गया।

9.2.2 साहित्य रचना

अमृतलाल नागर का साहित्यिक अवदान

नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कहानी नई कहानी' में लिखा था कि ''साहित्य के रूप केवल रूप नहीं हैं बल्कि जीवन को समझने के भिन्न माध्यम हैं। एक माध्यम जब चुकता दिखाई पड़ता है तो दूसरे माध्यम का निर्माण किया जाता है। अपनी महान जययात्रा में सत्य–शिव–द्रष्टा मनुष्य ने इसी तरह समय–समय पर नये–नये कला–रूपों की सृष्टि की ताकि वह नित्य विकासशील वास्तविकता को अधिक से अधिक समझ और समेट सके।'' इस कथन के संदर्भ में यदि अमृतलाल नागर के साहित्यिक अवदान पर बात की जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि अमृतलाल नागर अपने समय, समाज और संस्कृति को अपने साहित्य के माध्यम से समझ और समेट रहे थे। अमृतलाल नागर बहुमुखी

BHDC-109_4th proof.indd 162 8/6/2021 2:09:09 PM

प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अनेक उपन्यास, कहानियाँ नाटक, बाल साहित्य, फिल्म पटकथा, लेख, संस्मरण आदि की रचना की। परंतु उनकी ख्याति उनके उपन्यासों से मानी जाती है जिनमें अमृतलाल नागर अपने समय के मनुष्य और मनुष्यता का इतिहास प्रस्तुत कर देते हैं। अमृतलाल नागर की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं।

उपन्यास– महाकाल (1947 ई.), बूँद और समुद्र (1956 ई.), शतरंज के मोहरे (1959 ई.), सुहाग के नूपुर (1960 ई.), अमृत और विष (1966 ई.), सात घूंघट वाला मुखड़ा (1968 ई.), एकदा नैमिषारण्ये (1972 ई.), मानस का हंस (1973 ई.), नाच्यौ बहुत गोपाल (1978 ई.), खंजन नयन (1981 ई.), बिखरे तिनके (1982 ई.), अग्निगर्भा (1983 ई.), करवट (1985 ई.), पीढियां (1990 ई.)

कहानी संग्रह– एक दिल हज़ार अफ़साने सम्पूर्ण कहानियां (1983 ई.),

व्यंग्य– नवाबी मसनद, सेठ बाँकेमल (1940), कृपया दाएं चलिए, हम फिदाए लखनऊ, चकल्लस

नाटक– युगावतार, बात की बात, चंदनवन, चक्करदार सीढ़ियां और अँधेरा, चढ़त न दूजो रंग

अन्य कृतियाँ– गदर के फूल, ये कोठेवालियां, जिनके साथ जिया, टुकड़े टुकड़े दास्तान, अमृतलाल नागर रचनावली

बाल साहित्य– नटखट चाची, निंदिया आ जा, बजरंगी नौरंगी, बजरंगी पहलवान, बाल महाभारत, इतिहास झरोखे, बजरंग स्मगलरों के फंदे में, हमारे युग निर्माता

अनुवाद– बिसाती (मोपासां की कहानियां), आँखों देखा गदर (विष्णु भट्ट गोडसे की मराठी) दो फक्कड़ (कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के तीन गुजराती नाटक)

सम्पादन– सुनीति (1934), सिनेमा समाचार (1935–36), अल्लाह दे (1937–1938), चकल्लस (फरवरी 1928–अक्टूबर 1938), नया साहित्य (1945), सनीचर (1949), प्रसाद (1953–54)

सम्मान–

- प्रेमचंद पुरस्कार (1963–63)
- साहित्य अकादमी–1967
- सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार

बोध प्रश्न–1

1. उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–
   1. अमृतलाल नागर ने कोल्हापुर से निकलने वाले.....पत्र का संपादन किया।
   2. ..... और ..... अमृतलाल नागर की व्यंग्य रचनाएँ हैं।
   3. युगावतार, बात की बात, चंदनवन, चक्करदार सीढ़ियां और अँधेरा, चढ़त न दूजो रंग–अमृतलाल नागर की..... रचनाएँ हैं।
   4. 'एक दिल हज़ार अफ़साने' शीर्षक से अमृतलाल नागर का ..... है।
2. इनमें से कौन–सा उपन्यास नागर जी का नहीं है। कोष्ठक में सही का निशान का लगाइए।
   1. मानस का हंस ( )

BHDC-109_4th proof.indd 163 8/6/2021 2:09:09 PM

2. अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल ( )
3. सेवासदन ( )
4. अमृत और विष ( )

3. इनमें कौन–सा पुरस्कार नागर जी को नहीं मिला? कोष्ठक में सही का निशान लगाइए।

1. प्रेमचंद पुरस्कार ( )
2. साहित्य अकादमी ( )
3. सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार ( )
4. मूर्तिदेवी पुरस्कार ( )

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग चार–पांच पंक्तियों में लिखिए–

1. अमृतलाल नागर का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. अमृतलाल नागर का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

.....

9.3 अमृतलाल नागर के प्रमुख उपन्यासों का परिचय

अब हम उपन्यासकार–कथाकार अमृतलाल नागर के उपन्यास साहित्य पर विचार करेंगे।

महाकाल

यह उपन्यास बंगाल में सन् 1943 में पड़े भीषण अकाल की विभीषिका को अंकित करता है। यह उपन्यास सन् 1970 में 'भूख' नाम से पुनर्प्रकाशित भी हुआ। इस उपन्यास में साम्राज्यवाद के दुष्चक्रों में पिसती जनता की कराह को दर्ज किया गया है। बंगाल के एक छोटे से गाँव मोहनपुर पर केंद्रित इस उपन्यास का नायक पांचू गोपाल, पेशे से अध्यापक है। शिक्षा के माध्यम से गाँव के जीवन में हस्तक्षेप करने की इच्छा रखने वाला आदर्शवादी और संवेदनशील मास्टर अपने गाँव के लोगों को अकाल के समय में भूख से मरते देखता है। वह अपने परिवार को बचाने का भी प्रयास करता है। वह देखता है कि भूख के सामने रिश्ते और मानवता छोटी होती जा रही है। लोग पेट भरने लिए सामान जुटाने के लिए परिवार की स्त्रियों से वेश्यावृत्ति कराने के लिए मजबूर हो रहे हैं। स्वयं पांचू मास्टर का बेटा अपनी पत्नी से वेश्यावृत्ति करवाने को विवश हो जाता है। पांचू मास्टर अपने सामने भूख से बिलखते लोगों को देखता है। एक तरफ भुखमरी और लाचारी है तो दूसरी तरफ जमींदार और साहूकार व्यापारी ऐश्वर्य में डूबे रहते हैं। आवश्यक सामानों की कालाबाजारी कर ये लोग अपनी तिजोरियाँ भरते हैं।

BHDC-109_4th proof.indd 164 8/6/2021 2:09:09 PM

यह उपन्यास दर्शाता है कि जड़ और जनविरोधी सामंती व्यवस्था इस भयानक आपदा के समय में भी जनता का खून चूसने से बाज नहीं आती। भूख से बिलखते बच्चे, अपना जिस्म बेचने को मजबूर स्त्रियाँ, बेबस बुजुर्ग आदि सभी इस अकाल के कारण मनुष्यता के कगार पर आकर खड़े हो जाते हैं, जहाँ रिश्तों और मनुष्यता पर भूख हावी हो जाती है।

सेठ बांकेमल

अमृतलाल नागर का दूसरा उपन्यास 'सेठ बांकेमल', व्यंग्य प्रधान उपन्यास है। परम्परा और आधुनिकता के दो छोरों पर ठहरे दो पात्रों, सेठ बांकेमल और पारसनाथ चौबे इस उपन्यास के केंद्र में हैं। सेठ बांकेमल परम्परा समर्थक तो पारसनाथ चौबे आधुनिकता के समर्थक हैं। बातचीत की शैली में लिखे गए इस उपन्यास में कुल 16 कहानियाँ रखी गई हैं जो इस प्रकार हैं– बम्बई फोकस, दिल्ली का धावा, गोकुल की गोपियां, चौबे जी ने लंगोट कसा, भतीजे को पैसा ले भागा, राजा साहब की नाक कटी, सुभाष बाबू भाग गए, पंचायत राज, डाग्डर मुंगाराम, लव इज़ यूनीवर्सल, बावन नम्बर, साज्हां बार– साय ने कलेजा कूटा, कृष्ण जी मुहम्मद बने, पाँच का दांव, जोसे जवानी, तीर तलवार की आसकी मासकी। अमृतलाल नागर की किस्सागोई के हुनर को इस उपन्यास में देखा जा सकता है। कथा की रवानगी पाठक को बहा कर ले जाती है। नए और पुराने के द्वंद्व को दर्शाते इस उपन्यास में बदलते हुए समय के अनेक चित्र देखने को मिल जाते हैं। अमृतलाल नागर इसे व्यंग्य रचना ही माना करते थे।

बूँद और समुद्र

यह उपन्यास सन् 1956 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास का कथा केंद्र लखनऊ का चौक मुहल्ला है। इस उपन्यास में तद्कालीन लखनऊ के समाज को धड़कते हुआ देखा जा सकता है। लखनऊ की गलियाँ, वहाँ की बोली, वहाँ का पहनावा, रीति–रिवाज इस उपन्यास को विशेष बनाता है। 68 प्रकरणों और लगभग 600 पृष्ठों में फैले इस उपन्यास में अमृतलाल नागर की किस्सागोई को देखा जा सकता है। एक कथा के भीतर से निकलते अनेक कथा सूत्रों को नागर जी बेहद बारीकी से पकड़ते हैं और उसका विस्तार इस प्रकार से करते हैं कि कथा एकदम नई दिशा में चल पड़ती है। इस उपन्यास में वैसे तो अनेक पात्र महत्त्वपूर्ण हैं परंतु ताई का चरित्र इस उपन्यास के केंद्र में है। ताई, लखनऊ के रईस राजा बहादुर सर द्वारकादास अग्रवाल की पत्नी हैं। पर लड़की के जन्म और तदुपरांत उसकी मृत्यु के पश्चात राजाबहादुर पुत्र की लालसा में दूसरा विवाह कर लेते हैं। परित्यक्ता का जीवन जीती हुई ताई अपनी रक्षा के लिए टोने–टोटके, तंत्र मंत्र के सहारा ले लेती है। अपनी परिस्थितियों के कारण बेहद कटु स्वभाव की ताई के आस–पास तक कोई नहीं आना चाहता है। चौक के अनेक पात्रों को लिए यह उपन्यास समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करता है। ताई बाहर से सख्त है परंतु भीतर से कोमल भी है। अपनी निःसंतानता की कमी को बिल्ली के बच्चों को पालकर पूरा करती है। बाद में कन्नोमल के बेटे सज्जन को अपना बेटा बना लेती हैं और उसके गैर पारम्परिक विवाह को भी स्वीकार कर लेती हैं। सज्जन और उसका मित्र महिपाल इस उपन्यास के अन्य दो महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। जिनके माध्यम से उपन्यासकार अनेक सामाजिक–राजनीतिक मुद्दों पर चर्चा करता है। सज्जन का मित्र महिपाल, गाँधी से प्रभावित हो आज़ादी के आंदोलन में भाग लेता है। बिना दहेज विवाह भी करता है परंतु धीरे–धीरे उसका चरित्र बदल जाता है। वह सज्जन को निरंतर गिराने के लिए प्रचार में शामिल भी हो जाता है। सज्जन अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण से कथा को नया आयाम देता है। वह महिला सेवा मंडल में हो रहे भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करता है और समाज के ज़रूरतमंदों की सेवा के लिए चौक वार्ड सहकारी बैंक भी बनाता है। ताई का चरित्र उपन्यास के केंद्र में रहता है पर उसके साथ–साथ पूरा–पूरा चौक वहाँ मौजूद

BHDC-109_4th proof.indd 165 8/6/2021 2:09:09 PM

रहता है। ताई की मृत्यु गंगादशहरे के दिन हो जाती है और उपन्यास समाप्त हो जाता है। ताई और उपन्यास में आई अनेक स्त्रियाँ पुरुष वर्चस्ववादी समाज में स्त्रियों की दासता और शोषण की प्रतिनिधि बन कर आती है।

शतरंज के मोहरे

'शतरंज के मोहरे' वर्ष 1958 में प्रकाशित हुआ था। अवध की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इस उपन्यास में सन् 1820 ई. से 1837 ई. के मध्य लखनऊ के नवाब ग्यासुद्दीन हैदर और नवाब नसीरुद्दीन हैदर के शासन को केंद्र बनाया गया है। अमृतलाल नागर ने कल्पना के सहारे उस समय को जीवित कर दिया है। यह वो दौर था जब ब्रिटिश शासन भारत में अपने पैर जमा चुका था। छोटी–छोटी रियासतों के शासक अंग्रेज़ों की राजनीति की बिसात के मोहरे भर रह गए थे। दरअसल राजनीति की बिसात दरबार के बाहर ही नहीं थी अपितु दरबार और हरम भी भीतरी षड्यंत्रकारियों से भरा हुआ था जहाँ नित नई चालें चली जाती थीं। 'शतरंज के मोहरे' में एक तरफ नवाबों, शासकों का विलासी जीवन दिखाई देता है तो दूसरी तरफ आम जन का संघर्षों से भरा हुआ जीवन भी दिखाई देता है।

सुहाग के नूपुर

अमृत लाल नागर का यह उपन्यास ईसा की पहली शताब्दी के महाकवि इंलगोवन द्वारा रचित महाकाव्य शिलप्पदिकारम पर आधारित है। नगर के धनी व्यक्ति चेट्टी के पुत्र कोवलन उसकी पत्नी कन्नगी और नगरवधु माधवी के प्रेम त्रिकोण पर आधारित है। इस कथा में एक तरफ कन्नगी का अपने पति कोवलन के लिए प्रेम, त्याग, समर्पण और सेवा का भाव है तो दूसरी तरफ नगरवधु माधवी का कोवलन के प्रति एकाधिकार की भावना, कोवलन की ब्याहता बनने की इच्छा और प्रेम की पराकाष्ठा दिखाई देती है। कोवलन पत्नी और प्रेमिका के बीच चुनाव नहीं कर पाता है। कोवलन के भीतर वासना और दायित्व का द्वंद्व चलता है। माधवी भरपूर प्रयास करती है कि कोवलन पत्नी को छोड़कर उसके साथ रहने के लिए आ जाए परंतु समाज के दबाव और कन्नगी की सेवा कोवलन को ऐसा करने से रोकती है। अपनी बुरी आदतों के कारण कोवलन अपना सब कुछ गँवा देता है, कन्नगी अपने सुहाग के नुपुर अपने पति को देकर उसके नष्ट हो गए व्यवसाय को फिर से खड़ा करने की हिम्मत दे देती है और पति को हमेशा के लिए पा लेती है। उधर माधवी निरंतर प्रयास करके भी हार जाती है और पागल हो जाती है। परम्परा, समाज, मूल्य और व्यक्ति के द्वंद्व को यह उपन्यास उकेरता है।

ये कोठेवालियां– यह कृति सन् 1961 में प्रकाशित हुई थी। वेश्याओं के जीवन पर आधारित रचना में वेश्याओं के रेखाचित्र और साक्षात्कार के आधार पर रची गई इस रचना को कई विचारक उपन्यास नहीं मानते हैं।

अमृत और विष

यह उपन्यास सन् 1966 में प्रकाशित हुआ था। अपनी विषयवस्तु और आकार में 'अमृत और विष' एक बृहद आकार का उपन्यास है। उपन्यासकार का मानना है कि जीवन के समुद्र मंथन में से अमृत यानी सफलता, प्रेम, सार्थकता, सत्य, भाईचारा, सद्भावना, उन्नति की प्राप्ति होती है तो साथ ही झूठ, फरेब, असफलता, विद्वेष, भ्रष्टाचार, कदाचार, और षड्यंत्रों का विष भी प्राप्त होता है। मनुष्य को अमृत और विष दोनों को समान रूप से देखना चाहिए। जीवन की राहों में ऊँचे आदर्शों और मूल्यों को बचाए रखने के लिए अनेक बार बलिदान और त्याग करना पड़ता है जिसके लिए मनुष्य को तैयार रहना चाहिए। अमृत और विष पुराने जड़ मूल्यों के विष के बरक्स नए मानवीय मूल्यों, अमृत को रखता है। उपन्यासकार ने कथा के भीतर कथा का वितान रचा है। उपन्यास में लेखक अरविंद शंकर और उनके द्वारा लिखे जा रहे उपन्यास के माध्यम

BHDC-109_4th proof.indd 166 8/6/2021 2:09:09 PM

से लेखक और रचनाकार के जीवन के विविध संघर्षों को देखा जा सकता है। कथा के दो मुख्य पात्र रमेश और लक्ष्मीनारायण खन्ना युवा विद्रोही चेतना के प्रतिनिधि पात्र हैं, जो अपने समय में हस्तक्षेप करना चाहते हैं। साम्प्रदायिकता के विरुद्ध सभी धर्मों के समान आदर और राजनीतिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध राजनीतिक शुचिता पर अनेक महत्वपूर्ण बहसों से यह उपन्यास गुज़रता है। यह उपन्यास नागर जी की उच्च कोटि की किस्सागोई का प्रमाण है।

सात घूंघट वाला मुखड़ा

यह उपन्यास वर्ष 1966 में प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास आकार में लघु है। इतिहास, कल्पना और प्रचलित किंवदंतियों के सुंदर समन्वय से रचा गया यह उपन्यास बेगम समरू के चरित्र को साकार कर देता है। भारतीय इतिहास का यह दौर था जब मुगल साम्राज्य बिखर चुका था। छोटी–छोटी रियासतें पतनशील मुगल साम्राज्य को चुनौती दे रही थीं। दरबार, षड्यंत्रों और साजिशों के अड्डे बन रहे थे। दरबार में बैठे अमीर–उमरा, जागीरदार, सरदार जैसे–तैसे सत्ता हथिया लेना चाहते थे। एक तरफ दरबार के षड्यंत्र थे तो दूसरी तरफ बढ़ता हुआ ब्रिटिश साम्राज्य भी था। इतिहास के इस कठिन दौर में मेरठ के एक साधारण कश्मीरी सौदागर की बेहद खूबसूरत बेटी, जो मुन्नी, दिलाराम और जुआना के नाम से जानी जाती है, अपनी रियासत की मलिका बनने का स्वप्न देखती है। जिसकी वह कोई भी कीमत देने को तैयार हो जाती है। उपन्यास की कथा के तीन केंद्र हैं, आगरा, दिल्ली और सरधना। उपन्यास में कथा एक फ्रांसीसी जनरल वॉल्टर रेनहार्ड की चलती है जिसने अपनी चालाकी और रणनीति से वह अंग्रेजों के 148 अफसर तथा सैनिकों की हत्या करवा दी थी। इसी से खुश होकर मुगल बादशाह उसे सरधना का जागीरदार बना देता है और वॉल्टर रेनहार्ड नवाब समरू बन जाता है। मुन्नी का अपहरण बशीर खान का पिता करवा लेता है। मुन्नी अपना दिल बशीर खान को दे बैठती है पर वह दस हज़ार रुपए में मुन्नी को नवाब के हाथ बेच देता है और मुन्नी बन जाती है बेगम समरू। बेगम समरू नवाब का मन काबू कर लेती है और उसे दिल्ली की बादशाहत हथियाने के लिए तैयार करती है। सत्ता की महत्त्वाकांक्षा में वह नवाब के सिपहसालार टॉमस को भी अपने साथ मिला लेती है। दिल्ली की गद्दी तक पहुँचना उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है। उसके लिए रिश्ते मात्र रिश्ते नहीं होते बल्कि सियासत की बिसात पर खड़े मोहरे भर रह जाते हैं। बादशाह की सहायता कर वह स्वयं को मलिका–ए–हिंद की गद्दी बैठाना चाहती है। बेगम के जीवन में बशीर, नवाब समरू, टॉमस और लवसूल आते हैं। उपन्यास के अंत में टॉमस और लवसूल की आपसी टकराहट के कारण नवाब के सेना बिखर जाती है। सेना की बगावत के समय में लवसूल आत्महत्या कर लेता है और बेगम समरू या जुआना बिलकुल अकेली पड़ जाती है उसके साथ कोई नहीं रहता। राजनीति, देह, महत्त्वाकांक्षा, सत्ता के लिए जुनून से बनी यह कथा पाठक को रिश्तों, भावनाओं, प्रेम के मायनों पर फिर से विचार करने के लिए छोड़ देती है।

एकदा नैमिषारण्ये

अमृतलाल नागर का यह उपन्यास सन् 1972 में प्रकाशित हुआ था। सम्राट चंद्रगुप्त के समय के जनजीवन और समाज के विविध रूपों को सामने लाने वाले इस उपन्यास में व्यास, नारद और गणपति भी सर्वथा नए रूप में पाठकों के समक्ष आते हैं। भारतीय संस्कृति की परम्पराओं का वर्णन इस उपन्यास में दिखाई देता है। यह ऐतिहासिक रूप से स्थापित है कि प्राचीन काल से ही भारत के संबंध विश्व की अनेक महान सभ्यताओं के साथ रहे हैं। भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो भी संस्कृत के अनेक शब्द ग्रीक, जर्मन तथा लैटिन भाषाओं में मिल जाते हैं। इससे यह बात स्थापित होती है कि इन भाषाओं का उद्गम कहीं न कहीं एक ही था। यह उपन्यास अनेक

BHDC-109_4th proof.indd 167 8/6/2021 2:09:09 PM

पौराणिक–ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम भारतीय संस्कृति के विस्तार को दिखाता है। इस उपन्यास में 59 प्रकरण हैं। उपन्यास की कथा का वितान चंद्रगुप्त प्रथम तथा उनके पुत्र समुद्रगुप्त के काल को समेटता है। ईस्वी सन् 320 से 380 ई. के कालखंड को समेटता 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास नाग वंश, लिच्छवी, वाकाटक तथा भारशिव राज्यों में चल रही राजनीतिक–सामाजिक उथल पुथल को बयान करता चलता है। कथानक में वैष्णव और शैव मतों का द्वंद्व भी विद्यमान है। कथा के केंद्र में है सोमाहुति भार्गव। ऋषि भार्गव का पुत्र सोमाहुति अपने समय को देखते हैं तो पाते है कि देश भर में कुशासन है। वैष्णव को शैव और शैव को वैष्णव मतानुयायी फूटी आंख नहीं सुहाते है। वे चाहते हैं कि नैमिषारण्य में एक ऐसा कथा पर्व का आयोजन हो जिसमें देश भर से विद्वान आएँ और ज्ञान चर्चा हो। इसके लिए समर्थन और संसाधन जुटाने के उद्देश्य से वे देश भ्रमण करते हैं। सोमाहुति देखते हैं नाग देश में राजा और बहुसंख्यक प्रजा शैव मत को मानती है पर उनका व्यवहार वैष्णव मत को मानने वाले लोगों के प्रति द्वेषपूर्ण है। इसी बीच काशी का राजा चंद्रगुप्त अपने धर्मपिता की धोखे से हत्या कर सत्ता हथिया लेता है। अपने राज्य विस्तार के लिए वह नाग राजाओं तथा अन्य राज्यों से युद्ध छेड़ देता है। चंद्रगुप्त, धनक सेठ की पुत्री से धन के लिए तो नेपाल के राजा की पुत्री से शक्ति के लिए विवाह करता है। युवराज समुद्रगुप्त भी पिता की भाँति महत्त्वाकांक्षी है वह वाकाटक वंश प्रवरसेन से कड़ा युद्ध करता है तथा संधि कर राज्य का हिस्सा बना लेता है। सोमाहुति, महर्षि व्यास के सम्पर्क में आते है। वे बड़े स्नेह से सोमाहुति भार्गव को अपने आश्रम में स्थान देते हैं। यहीं पर बारह वर्षीय कथा–सत्र की योजना आकार पाती है। सोमाहुति रामायण की तरह महाभारत को जन–जन तक पहुँचाना चाहते हैं। एक लिपिक की खोज उन्हें गिरागुरु नाग के सम्पर्क में ले आती है। गिरागुरु नाग देवनागरी लिपि के अविष्कारक हैं। एक लाख श्लोकों वाले महाभारत को लिखने का कार्य वे स्वीकार कर लेते हैं। इधर सोमाहुति के सखा नारद देश–विदेश का भ्रमण करते हुए अनुभव करते हैं कि आर्य जाति का विस्तार ईराक, फारस, मिस्र जैसे देशों तक भी था। बाद में दक्षिण भारत में जैन धर्म स्वीकार कर गृहस्थ में प्रवेश कर जाते हैं। जब बारह वर्षीय कथा–सत्र का का समापन होता है तो सोमाहुति भार्गव की बरसों की साध पूरी होती है। नैमिषराण्ये में चौरासी हज़ार संत एकत्र होते हैं। सभी पवित्र स्थलों और नदियों का जल लाकर नैमिषारण्य को पवित्र किया गया। भारत को सांस्कृतिक–भावात्मक एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास एक आकार ग्रहण करता है। सत्र के अंत में सोमाहुति भार्गव द्वारा रचित गीता का पाठ होता है। ज्ञान, कर्म और धर्म की शिक्षा देने वाली इस कृति का व्यापक प्रभाव होता है। सोमाहुति देश भ्रमण के लिए निकल जाते हैं। प्रचेता को नैमिषारण्य की व्यास गद्दी पर बैठा दिया जाता है। कथा निरंतर इस तथ्य को स्थापित करती है कि विभिन्न मतों में बँटा कभी एक नहीं हो सकता। सभी मतों को एक–दूसरे का सम्मान कर व्यापक जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

मानस का हंस

'मानस का हंस' उपन्यास ने अमृत लाल नागर को अक्षय प्रतिष्ठा प्रदान की। हिंदी साहित्य के सर्वाधिक सम्मानित महाकवि तुलसीदास की जीवनी को उपन्यास के रूप में ढालने का साहसिक और महती कार्य उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने किया है। सन् 1972 में मानस चतुश्शती के दिन यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था। अभागे मान कर त्यागे गए बालक रामबोला से महाकवि तुलसीदास तक की संघर्ष, अपमान, उपेक्षा, दृढ़ निश्चय, प्रतिभा, जिजीविषा और अपने आराध्य राम में अटूट आस्था से भरी इस कथा में मनुष्य के उत्कर्ष–अपकर्ष, सत्य–असत्य, रूढ़–प्रगतिशील सभी रूपों को देखा जा सकता है। भक्तिकालीन कवियों की यह विशेषता रही है कि आराध्य के साथ–साथ आराधक भी पूजनीय बन जाता है। कबीर, तुलसी, सूर, नानक सभी के उदाहरणों में

BHDC-109_4th proof.indd 168 8/6/2021 2:09:09 PM

इस बात को देखा जा सकता है। भारतीय जनमानस में रामचरित मानस के रचयिता के तुलसीदास की छवि मात्र एक रचनाकार की नहीं है बल्कि एक संत और महात्मा की भी है। ऐसे व्यक्तित्व को साहित्य में उतारने में समस्या यह होती है कि रचयिता को देवता का दर्जा मिल जाता है और मनुष्य कहीं पीछे छूट जाता है। अमृतलाल नागर ने इस उपन्यास में महाकवि, महात्मा तुलसीदास के भीतर एक सहज, साधारण मनुष्य को स्थापित कर दिया है। यानी एक प्रतिमा में जीवन का संचार किया है। एक ऐसा व्यक्ति जो सामान्य मनुष्य की तरह जाति–धर्म–वर्ग के बंधनों का तिरस्कार कर एक युवती से टूटकर प्यार करता है। जो आश्रम में आने वाली स्त्रियों के आकर्षण को अनुभव करता है। एक सामान्य मनुष्य की तरह गृहस्थ होने पर पत्नी और बच्चे के साथ अपने भविष्य को सुरक्षित करने का प्रबंध करता है। जो अपमान, उपेक्षा और विरोध के विष का आचमन कर भक्ति, श्रद्धा, मनुष्यता में अटूट विश्वास के अमृत को साहित्य के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाने का काम करता है। इस उपन्यास में अमृतलाल नागर इतिहास, कल्पना, जनश्रुतियों के साथ–साथ तुलसीदास को साहित्य को कथा का आधार बनाते हैं। 'मानस का हंस' वास्तव में अमृतलाल नागर को उपन्यासकार के रूप में भारतीय साहित्य में अमर कर देता है।

खंजन नयन

'मानस का हंस' की भांति 'खंजन नयन' भक्तिकालीन साहित्य की एक और विभूति सूरदास के जीवन पर केंद्रित है। सन् 1981 में प्रकाशित इस उपन्यास में अमृतलाल नागर ने महाकवि सूरदास के जीवन को इतिहास, कल्पना, जनश्रुति और साहित्य के माध्यम से पुनर्सृजित किया है। इतिहास की धूल को हटा कर 'खंजन नयन' सूरदास के समय की राजनीतिक–सामाजिक परिस्थितियों, साहित्यिक–सांस्कृतिक प्रवृत्तियों, धार्मिक रूढ़ियों–प्रथाओं धार्मिक–दार्शनिक वाद–विवादोंको पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। महाकवि सूरदास के जीवन को शब्दों में बाँधते हुए अमृतलाल नागर अनेक बार प्रचलित मान्यताओं और कथाओं से टकराते हैं। तर्क और इतिहास की गहरी समझ के चलते वे उन बाधाओं से पार पाते हैं। अमृतलाल नागर देवत्व में मनुष्यता की स्थापना करने का प्रयास निरंतर करते हैं इसलिए 'मानस का हंस' की भाँति 'खंजन नयन' में भी सूरदास को देवता नहीं बनाते अपितु साधारण मनुष्य की भाँति राग–द्वेष, प्रेम–घृणा, आदि के भावों से वे देवता की मूर्ति में प्राण–प्रतिष्ठा करते हैं। सूर के जीवन में 'कंतो मल्लाहिन प्रेम–प्रसंग' इस का प्रमाण है। मठों की राजनीति और धार्मिक पाखंडों पर भी उपन्यासकार की दृष्टि गई है। अमृतलाल नागर का यह उपन्यास जीवनी परक है। उपन्यास का अंत पाठक को शांत मनःस्थिति में ले आता है। वैष्णव भक्तिधारा में पुष्टिमार्ग का जहाज कहे जाने वाले सूरदास लम्बी, समृद्ध आयु के बाद प्राण त्याग देते हैं। मृत्यु से कुछ पहले सूरदास पद रचते हैं– 'खंजन नयन रूप रस माते'। उपन्यास की अंतिम पंक्तियां हैं–''चंदन चिता की ऊँची लपटें उठ रही थीं मानो आज ही सूरदास ज्वाला की मीनारों पर चढ़कर पहली बार अपना ब्रजधाम देख रहे हों।'' पूरा जीवन सूरदास ब्रजभूमि के कण–कण को जीते रहे। ब्रज की गलियों, घरों, चौराहों, घाटों, कुंजों और नदी के किनारों में अपने आराध्य कृष्ण की छवि को देखते रहे और जब उनका शरीर नष्ट हो चुका था तब भी उनकी आत्मा जैसे अग्नि की पवित्र मीनार से अपनी प्रिय ब्रजभूमि का दर्शन कर रही है। ब्रजभूमि से उनका रागात्मक संबंध मृत्यु के पश्चात भी प्रगाढ़ रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मृत्यु के बाद भी ब्रजधाम के अंतिम दर्शन का अटूट मोह सूरदास छोड़ नहीं पा रहे हैं।

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल

सन् 1977 में प्रकाशित 'अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल' दलित समाज में भी अपमानित की जाने वाली मेहतर जाति के संघर्ष को सामने लाता है। मलिन बस्तियों में रहकर, अनेक

BHDC-109_4th proof.indd 169 8/6/2021 2:09:09 PM

साक्षात्कारों और अनुभवों से अमृतलाल नागर ने तीन वर्षों के शोध और श्रम से 'अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल' का सृजन किया। यह सच है कि भारतीय समाज में जाति आधारित अन्याय और शोषण को धार्मिक–नैतिक तर्कों से सही साबित करने के प्रयास किए जाते रहे हैं, इसका परिणाम है कि समाज का बहुत बड़ा हिस्सा समाज की मुख्यधारा से पीछे धकेल दिया गया। शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य, आवास जैसी बुनियादी आवश्यकताएँ तो दूर उन्हें बुनियादी मानवीय गरिमा और सम्मान से भी वंचित कर दिया गया था। अमृतलाल नागर ने मेहतर जाति के इतिहास, वर्तमान की दशा और उनके भविष्य के लिए किए जा रहे संघर्ष को उपन्यास में दर्ज करने का प्रयास किया है।

अग्निगर्भा

'अग्निगर्भा' स्त्री जीवन के विविध आयामों पर केंद्रित उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 1983 में हुआ था। यह उपन्यास स्त्री के संघर्ष और जिजीविषा को सामने लाता है। यह सत्य है कि भारतीय समाज में ही नहीं अपितु वैश्विक समाज में भी स्त्री को उसका उचित स्थान नहीं मिला है। परम्परा, मर्यादा, प्रथा और मान्यता की बंदिशों में जकड़ कर स्त्री को देवी तो बना दिया गया परंतु उसे मनुष्य के रूप में स्वीकार्यता नहीं मिली। स्त्री को त्याग, ममता, प्रेम और सेवा की प्रतिमूर्ति माना जाता है। यह माना जाता है कि घर की चारदीवारी स्त्री का कार्यक्षेत्र है जिसमें वह अपना सर्वोत्तम दे सकती है। पुरुष वर्चस्ववाद और पितृसत्ता ने स्त्री को इतनी धार्मिक–सामाजिक ज़ंजीरों में जकड़ दिया कि वह स्वयं अपना अस्तित्व भूल गई। पर जब स्त्री जाग कर अपनी अस्मिता और अधिकारों के लिए लड़ने के लिए तैयार हो जाती है तो स्त्री को पुरुष वर्चस्ववादी समाज पथभ्रष्ट घोषित कर देता है। जब तक स्त्री पुरुष की वासना और भोग के लिए तैयार है तब तक स्त्री सही है परंतु अधिकार माँगती स्त्री को सामाजिक गरिमा, सम्मान से वंचित करने से लेकर दबाने–मारने तक के प्रयास किए जाते हैं पर विद्रोही स्त्री इससे डरती नहीं। सम्भवतः इसीलिए अमृतलाल नागर इस उपन्यास का नाम 'मैं मरूंगी नहीं' रखना चाहते थे। स्त्री जीवन के संघर्ष को समर्पित यह कृति भारतीय समाज की संरचना में बसे पुरुष वर्चस्ववाद और उसके अमानवीय शोषण को कथा के केंद्र में रखते हैं। अग्निगर्भा स्त्री ही वास्तव में भविष्य की स्त्री को जन्म देगी जो तमाम रूढ़िवादी संस्कारों, पाखंडों और प्रथाओं को त्याग कर नया समता आधारित समाज बनाएगी।

करवट और पीढ़ियाँ

'करवट' और 'पीढ़ियाँ' अमृतलाल नागर के दो ऐसे उपन्यास हैं जिन्हें एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। 'करवट' उपन्यास सन् 1805 से सन् 1905 ई. के बीच की अवधि का इतिहास दिखाता है तो 'पीढियाँ' 1905 से 1942 तक की अवधि के इतिहास को दिखाता है। लखनऊ शहर के टंडन परिवार की कहानी इन दोनों उपन्यासों में कही गई है। 'करवट' अंग्रेजी साम्राज्य के समय में लखनऊ के एक खत्री परिवार लाला मुसद्दी लाल उनके पुत्र वंशीधर टंडन और देश दीपक टंडन की कहानी कहता है। यह उपन्यास दिखाता है कि ब्रिटिश शासन के समय में मध्यवर्ग किस प्रकार का जीवन जी रहा था। उपन्यास ब्रिटिश शासन के दौरान हो रही लूट का चित्रण करता है। भारतीय उद्योगों को तबाह करने के लिए ब्रिटिश शासन लगातार नीतियाँ बना रहा था। विलायती कपड़े के प्रति मोह और भारतीय कपड़े पर लगे टैक्स ने किस प्रकार भारतीय कपड़ा उद्योग को समाप्त कर दिया, उसके अनेक चित्र इस उपन्यास में देखने को मिल जाते हैं। उपन्यास यह भी दिखाता है कि किस प्रकार मध्यवर्ग ब्रिटिश शासन के समय में सुरक्षा का जीवन जी रहा था। पर धीरे–धीरे वंशीधर टंडन का ब्रिटिश राज से मोहभंग हो जाता है और वह आज़ादी की लड़ाई में शामिल हो जाता है। इस उपन्यास में अमृतलाल नागर विस्तार से ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में आ रहे

BHDC-109_4th proof.indd 170 8/6/2021 2:09:10 PM

राजनीतिक–सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों को दर्ज करते हैं। यह तथ्य है कि अंग्रेजी राज ने अभी तक चले आ रहे भारतीय समाज के सामने एक नई चुनौती प्रस्तुत की। ब्रिटिश राज के संरक्षण में पनप रहे सामंतवाद को अपना अस्तित्व खतरे में नज़र आता था इसलिए भारत का सामंती समाज ब्रिटिश शासन का आधिपत्य स्वीकार कर लेता है। पर युवा वर्ग नई चेतना का सूर्य बन कर उभरता है और नए समाज के निर्माण का सपना देखता है।

'पीढ़ियाँ' उपन्यास वहाँ से प्रारम्भ होता है जहाँ से करवट उपन्यास समाप्त होता है। वंशीधर का पोता यानी देशदीपक का पुत्र जयंत उसी वर्ष जन्म लेता है जिस वर्ष में करवट उपन्यास का अंत होता है। यह उपन्यास भारतीय राजनीति के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कालखंड की कथा कहता है। इस इतिहास में भारतीय राजनीति में सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा जैसे मूल्य शामिल होते हैं। इस दौर में भारतीय समाज ब्रिटिश शासन से मुक्ति के लिए सघर्ष करता है। 'पीढ़ियाँ' एक तरफ भारतीय समाज में आ रहे राजनीतिक बदलावों को रेखांकित करता है तो दूसरी तरफ समाज के सामाजिक–आर्थिक मूल्यों को।

9.4 अमृतलाल नागर का महत्त्व

हिंदी साहित्य को भारतीय समाज के विविध चित्रों को सजाने वाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी अमृतलाल नागर ने उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण, व्यंग्य, आलोचना जैसी सभी प्रमुख विधाओं में लिखा। साहित्य की जिस भी विधा पर हाथ रखा उस विधा के साथ न्याय किया। अमृतलाल नागर को कथा सम्राट प्रेमचंद की परम्परा का रचनाकार माना जाता है। प्रेमचंद की भाँति अमृतलाल नागर ने भारतीय समाज और उसकी विशेषताओं को पूरी समग्रता में देखने का और अपनी रचनाओं में चित्रित करने का प्रयास किया। आज़ादी के आंदोलन को करीब से देखने वाले अमृतलाल नागर ने आज़ादी के बाद के भारतीय समाज का अध्ययन भी गहराई से किया है। इसका प्रमाण है उनका प्रचुर साहित्य। उनके उपन्यासों में ब्रिटिश राज की यातना, सामंती समाज के सड़े–गले मूल्य, समाज में फैले पाखंडों, अंधविश्वासों, राजनीतिक–आर्थिक भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, स्त्री मुक्ति जैसे मुद्दों को देखा जा सकता है। 'महाकाल' उपन्यास में अमृतलाल नागर दिखाते हैं कि आपदा के समय में जब मानवता को उदात्तता की आवश्यकता होती है तब भी मुनाफाखोर साहूकार और बर्बर जमींदार किसानों के शोषण से बाज़ नहीं आते तो 'बूँद और समुद्र' लखनऊ के चौक की कहानी के माध्यम व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बंध के महत्त्व को दर्शाता है। यह दिखाता है कि व्यक्ति समाज के बिना और समाज व्यक्ति के बिना अधूरे हैं। अमृतलाल नागर का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि वे विपरीत परिस्थितियों में धैर्य, स्वाभिमान, आस्था और विवेक का परिचय देने वाले अनेक पात्रों को हमारे सामने लाते हैं। 'महाकाल' का पाँचू, 'बूँद और समुद्र' की ताई, 'मानस का हंस' के तुलसीदास, 'अमृत और विष' के अरविंद शंकर और रमेश और 'खंजन नयन' के सूरदास ऐसे ही पात्र हैं जो निराशा, असंतोष, अनास्था के वातावरण में मनुष्य की जिजीविषा और न्याय में निष्ठा को स्थापित करने कि लिए प्रेरित करते हैं। 'अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल' उपन्यास तो जैसे भारतीय समाज में फैले जातिवाद और अस्पृश्यता की क्रूरता और अमानवीयता का आईना है। धार्मिक रूढ़िवाद और साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर अमृतलाल नागर की दृष्टि प्रगतिशील थी। वे धार्मिक आस्था और साम्प्रदायिकता को अलगाते हुए मानव धर्म की स्थापना का कार्य करते हैं।

अमृतलाल नागर गहरी इतिहास दृष्टि से सम्पन्न रचनाकार थे। प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्रों में अपनी कल्पना से रंग भरकर उन्होंने उन चरित्रों को वर्तमान के पटल पर प्रस्तुत कर भविष्य की आधारभूमि तैयार की है। उनके द्वारा रचित तुलसी, सूर जैसे महाकवियों के चरित्र हों या फिर ब्रिटिश राज में राजनीति की बिसात पर मोहरों की तरह

BHDC-109_4th proof.indd 171 8/6/2021 2:09:10 PM

इस्तेमाल में आने वाले सामंत, नवाब हों सभी में इतिहास की पुनर्व्याख्या दिखाई देती है। अमृतलाल नागर गहरे शोध और व्यापक अध्ययन से अपने पात्रों की रचना करते हैं।

अमृतलाल नागर ने अपनी अद्‌भुत किस्सागोई और विशिष्ट कहन की शैली से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। उनका भाषा संसार बहुत बड़ा है। हिंदी की जड़ें मानी जानी वाली हिंदी की बोलियों को साहित्य के पटल पर अमृतलाल नागर ही लाते हैं। उनके उपन्यासों की भाषा में अवधी, ब्रज, खड़ी बोली हिंदी और उर्दू से सजी हिंदुस्तानी में स्थानीय बोलियों, क्षेत्रीय स्वरों और भाषिक प्रयोगों को सहज की देखा जा सकता है। उनके पात्र उपन्यासकार की भाषा नहीं बल्कि अपने परिवेश की भाषा बोलते हैं। संवादों में जटिल से जटिल दार्शनिक विषय की व्याख्या इसी समृद्ध भाषा के कारण संभव हो पाया है।

हिंदी उपन्यास की परम्परा में अमृतलाल नागर का नाम प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, यशपाल की श्रेणी में रखा जाता है। इन उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी से पूरे भारत के अनुभवों को अभिव्यक्ति दी है। अमृतलाल नागर के उपन्यासों का फलक बेहद बड़ा है। प्राचीन भारतीय इतिहास, और संस्कृति से लेकर तुलसी, सूर जैसे साहित्य के विशिष्ट व्यक्तित्वों तक और स्वाधीनता पूर्व के भारत के राजनीतिक यथार्थ से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य को उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है। इतिहास, कल्पना और पैनी यथार्थ दृष्टि से अमृतलाल नागर ने भारतीय जनजीवन को उसके जीवंत रूप में प्रस्तुत कर दिया है।

बोध प्रश्न–2

5. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिएः

क) बम्बई फोकस, दिल्ली का धावा, गोकुल की गोपियां, चौबे जी ने लंगोट कसा, भतीजे को पैसा ले भागा आदि कहानियाँ नागर जी के उपन्यास..... में शामिल हैं।

ख) सेठ बांकेमल उपन्यास के दो प्रमुख पात्र लखनऊ के दो नवाब ..... और ..... हैं।

ग) 'मानस का हंस का प्रकाशन वर्ष ..... है।

6. पाँच–पाँच पंक्तियों में प्रश्नों का उत्तर लिखिएः

1. 'महाकाल' उपन्यास किस विषय पर आधारित है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. 'मानस का हंस' उपन्यास की आधारभूमि क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

BHDC-109_4th proof.indd 172 8/6/2021 2:09:10 PM

3. कथाकार अमृतलाल नागर का महत्त्व बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

9.5 सारांश

इस पाठ में हमने प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर के व्यक्तित्त्व और कृतित्व को समझा और यह जाना कि अमृतलाल नागर ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में रचना की है। वे अपने समाज के विविध अनुभवों को अपने समाज के सामने रखना चाहते थे। प्रेमचंद की यथार्थवादी परम्परा का निर्वाह करते हुए अमृतलाल नागर ने अपनी रचनाओं से साहित्य को विशेषतः हिंदी उपन्यास को समृद्ध किया। भारतीय समाज की जटिलताओं को समझते हुए उन्होंने भारतीय जनमानस के मनोविज्ञान को अपने पात्रों के माध्यम से सजीव कर दिया है। इस इकाई में हमने उनके प्रचुर साहित्य में से उनके उपन्यासों की कथावस्तु और विषय से परिचय प्राप्त किया।

9.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1 के उत्तर

1. रिक्त स्थान–

   1. चकल्लस; 2. नवाबी मसनद, सेठ बांकेमल 3. नाट्य; 4. कथा संग्रह

2. सेवासदन
3. मूर्तिदेवी पुरस्कार
4. प्रश्नों के उत्तर के लिए 9.2 देखें।

बोध प्रश्न–2 के उत्तर

5. रिक्त स्थान की पूर्ति–

   (क) सेठ बांकेमल; (ख) ग्यासुद्दीन हैदर, नवाब नसीरुद्दीन हैदर; (ग) सन् 1972

6. पहले दो प्रश्नों के लिए इकाई का भाग 9.3 देखें।

   तीसरे प्रश्न के लिए इकाई का भाग 9.4 देखें।

BHDC-109_4th proof.indd 173 8/6/2021 2:09:10 PM

इकाई 10 'मानस का हंस' का औपन्यासिक शिल्प

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 'मानस का हंस' का कथा सार

10.3 'मानस का हंस' के प्रमुख चरित्र

10.4 परिवेश

- 10.4.1 राजनीतिक परिवेश
- 10.4.2 धर्मिक परिवेश
- 10.4.3 सामाजिक परिवेश
- 10.4.4 आर्थिक परिवेश

10.5 संरचना–शिल्प

- 10.5.1 शैली
- 10.5.2 भाषा
- 10.5.3 लोकोक्तियाँ और मुहावरे

10.6 मूल्यांकन

- 10.6.1 रचनाकार की दृष्टि
- 10.6.2 शीर्षक की उपयुक्तता

10.7 सारांश

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.9 उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को अमृतलाल नागर के कालजयी उपन्यास 'मानस का हंस' के औपन्यासिक शिल्प से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- 'मानस का हंस' उपन्यास की कथा संक्षेप में जान सकेंगे;
- 'मानस का हंस' के प्रमुख पात्रों से परिचित हो सकेंगे;
- उपन्यास की शैली का परिचय दे सकेंगे;
- उपन्यास की भाषा के स्वरूप को जान सकेंगे;
- 'मानस का हंस' उपन्यास लिखने की लेखकीय दृष्टि से परिचित हो सकेंगे; और
- उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता को जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

'मानस का हंस' की कथा मध्यकालीन भारत के एक ऐसे समय को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है जिसमें भारत में अनेक बड़े धार्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन हो

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

रहे थे। हिंदी साहित्य के इतिहास में इस युग को भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। समाज की निम्न जातियों (भक्तिकाल के संदर्भ में) से आने वाले संत अभी तक की चली आ रही सामाजिक असमानता को चुनौती दी और ईश्वर का सर्वजन–सुलभ निर्गुण निराकार रूप को सामने रखा, तो सगुणोपासक भक्त ईश्वर की व्यापक सगुण–साकार छवि का प्रचार कर रहे थे। जाति–पाँति की निरर्थकता, धार्मिक पाखंडों का विरोध, विषमता और असमानता का तिरस्कार कर ईश्वर के समदर्शी रूप की प्रतिष्ठा इस युग की पहचान है। समाज इन दोनों ही धाराओं में बह रहा था। उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने 'मानस का हंस' में महाकवि तुलसीदास के जीवन चरित को रचा है। यह उपन्यास तुलसी के जीवन चरित के माध्यम से मध्ययुग के जीवन और समाज चित्रण करता है। उपन्यास में जैसे–जैसे तुलसीदास के जीवन की कथा आगे बढ़ती है वैसे–वैसे समाज के जटिल आर्थिक संबंध पाठकों के समक्ष उजागर होने लगते हैं। इतिहास, जनश्रुति, मूल तुलसी साहित्य और कल्पना से निर्मित यह उपन्यास मध्यकालीन भारत के समाज का आईना बनकर सामने आता है। यह उपन्यास मात्र एक व्याक्ति का जीवन चरित नहीं रह जाता अपितु एक व्यक्ति के जीवन संघर्ष के माध्यम से पूरे समाज के उन सभी व्यक्तियों का जीवन संघर्ष बन जाता है जो विपरीत सामाजिक–धार्मिक–आर्थिक परिस्थितियों से टकराकर अपने जीवन को एक दिशा देते हैं। अमृतलाल नागर का भाषा संसार उनके अनुभव संसार का प्रतिबिंब है इसलिए उपन्यास में विभिन्न वर्गों के पात्र सजीव प्रतीत होते हैं। सभी चरित्रों की भाषा उनके सामाजिक–सांस्कृतिक बुनावट से जन्मी है। इसका अध्ययन भी आप इस इकाई में करेंगे।

10.2 'मानस का हंस' का कथा सार

मध्यकालीन हिंदी साहित्य को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है उसके कारण बड़े स्पष्ट हैं कि इस युग में कबीर, जायसी, तुलसीदास, नानक, मीरां जैसे बड़े कवियों ने अपनी रचनाओं से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। इनमें भी गोस्वामी तुलसीदास का स्थान अप्रतिम है। इन्हीं के जीवन को आधार बना कर उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने 'मानस का हंस' शीर्षक से एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास की रचना की है। उपन्यास के 'आमुख' में अमृतलाल नागर कहते हैं कि "यों कहने को तो रघुबरदास, वेणीमाधवदास, कृष्णदत्त मिश्र, अविनाश राय और संत तुलसी साहब के लिखे पाँच जीवनचरित हैं। किंतु विद्वानों के मतानुसार वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते।" पर 'मानस का हंस' इस अर्थ में एक विशिष्ट उपन्यास है क्योंकि इसमें गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं, जनश्रुतियों तथा इतिहास के माध्यम से कवि के जीवन को पुनर्सृजित किया गया है। वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "आख्यान और जनश्रुतियों की पुनर्रचना इस रचना में बहुत प्रभावी है। अज्ञात की रचना आसान है, उसमें कल्पना की इधर–उधर की निर्बाध और पूरी छूट रहती है। ज्ञात और लोकप्रिय की पुनर्रचना बहुत मुश्किल काम है। यहाँ कल्पना को तय रास्तों पर चलना होता है। अमृतलाल नागर को ज्ञात और लोकप्रिय की पुनर्रचना में महारत हासिल है।" उपन्यासकार ने इस उपन्यास में किसी भी प्रकार से महाकवि तुलसीदास का महिमामंडन नहीं किया है अपितु इस कृति में तुलसी एक सामान्य मनुष्य के रूप में चित्रित हुए हैं। ऐसा मनुष्य जो अपने संघर्ष, सुखों–दुःखों, लालच, वासनाओं के साथ भक्ति, सदाचार, परोपकार जैसे जीवन के महान लक्ष्यों के साथ जीवित है। जिसमें अतंर्द्वंद्व है। वह मात्र आदर्शों और सिद्धांतों का निर्वाह करने वाला काल्पनिक पात्र नहीं हैं।

उपन्यास की रचना शैली में कथानायक तुलसीदास अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों, विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देते हुए बताते चलते हैं। कभी रामू, कभी बेनीमाधव, कभी बाल सखा राजा भगत के अनुरोध पर स्मृतियों की यह यात्रा चलती है। उपन्यास की कथा का सूत्र तो सीमित हो सकता है परंतु उसका कथानक विस्तृत होता है। ई.एम. फॉर्स्टर

BHDC-109_4th proof.indd 175 8/6/2021 2:09:10 PM

ने अपनी पुस्तक 'उपन्यास के पक्ष' में कथानक को परिभाषित करते हुए लिखा है– हमने कहानी को कालक्रम में नियोजित घटनाओं के वर्णन रूप में परिभाषित किया है। कथानक भी घटना–क्रम का विवरण है लेकिन यहां कारणत्व पर अधिक बल होता है।'' इस तरह से यदि देखा जाए तो कथानक कथा–सूत्र को जीवंतता प्रदान करता है। उपन्यासकार अमृतलाल नागर 'मानस का हंस' में महाकवि तुलसीदास के जीवन को पूरी कार्य–कारण श्रृंखला में प्रस्तुत कर देते हैं। अनेक स्थानों पर वे तुलसी साहित्य से साक्ष्य लेते हैं तो अनेक स्थानों पर परिवेश और परिस्थिति के अनुसार कल्पना का सहारा लेते हैं। उपन्यास को जीवंतता प्रदान करने के लिए उपन्यासकार अपने पात्रों को इस तरह से रचता है जैसे कि वे उसके देखे–भाले–सुने–समझे जीवित व्यक्ति हों। रचनाकार पात्रों के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं को निरंतर पढ़ता है और उनके भीतरी बाह्य जीवन को जीता है और साक्षी भी बनता है। अमृतलाल नागर भी 'मानस का हंस' में अपने युग–परिवेश को अपने पात्रों के माध्यम से जीवित कर देते हैं। उपन्यास 'मानस का हंस' की कथा को प्रारम्भ, मध्य और अंत में स्पष्टतः बाँटा जा सकता है। हर भाग का अपना सौंदर्य, वैशिष्ट्य और महत्त्व है।

'मानस का हंस' की कथा का प्रारम्भ महाकवि तुलसीदास के कठोर और कष्टप्रद बचपन से लेकर युवा तुलसी के प्रेम–प्रसंग और शिक्षा प्राप्ति तक चलती है। कहानी के मध्य में पाठक तुलसीदास को एक स्थापित कथा–वाचक बनते और गृहस्थ जीवन में रमे देखते हैं। यहाँ पर तुलसी के भीतर के कवि को प्रौढ़ होते देखते हैं। कथा का अंत तुलसीदास के गृहस्थ आश्रम से विमुख होने तथा रामचरित मानस के रचयिता के रूप में स्थापित होने की कथा को रखता है। यह समय तुलसीदास के विरुद्ध चल रहे षड्यंत्रों और उन पर तुलसीदास की विजय का समय है। कथा के अंत में वृद्धावस्था सम्बंधी समस्याओं से महाकवि तुलसीदास की मृत्यु को दर्शाया गया है।

कथा का प्रारम्भ– कथा का प्रारम्भ तुलसीदास की पत्नी के देहांत के साथ होता है। जहाँ लगभग छः दशक के बाद तुलसी रत्नावली को देखते हैं। यहीं से कथा अतीत और वर्तमान के दो हिस्सों में चलती है। उम्र के अंतिम पड़ाव पर खड़े तुलसी जैसे अपने जीवन के अनुभवों का पिटारा खोल देते हैं। तुलसी का प्रारम्भिक जीवन अत्यंत कष्टप्रद रहा। राजापुर (पूर्व में विक्रमपुर) में एक विद्वान ब्राह्मण आत्माराम के घर अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्मे तुलसीदास की माता 'हुलसी' का देहांत उनके जन्म के समय ही हो गया। पिता ने अपशकुन मान कर बच्चे को दासी के हाथ फिंकवा दिया। पर वह दासी उस नन्हें बालक को पार्वती नाम की वृद्ध महिला को सौंप आती है। पार्वती अम्माँ बालक तुलसी को आश्रय देती हैं। थोड़ा बड़ा होने पर वृद्धा पार्वती के साथ बालक 'रामबोला' भिक्षा माँग–माँग कर गुज़ारा करता है। अनेक बार अबोध बालक रामबोला को अपमान और मार को झेलना पड़ता है। बालक रामबोला भजन गाता है पर कहीं दुत्कारा जाता है तो कहीं मनहूस कह कर अपमानित किया जाता है। जिससे तंग आकर वह प्रण लेता है कि अब वह कभी भिक्षा नहीं माँगेगा। पार्वती अम्माँ बालक को समझाती हैं कि यह अपमान तो तपस्या है इसलिए वह निराश न हो। एक दिन वृद्ध पार्वती अम्माँ भी चल बसती हैं और राम के नाम पर भीख माँगने वाला रामबोला बिलकुल अकेला रह जाता है। बालक रामबोला जैसे–तैसे अपने जीवन को समेटता है परंतु विपदाएँ उसे अकेला नहीं छोड़तीं। एक दिन शक्ति के मद में चूर एक ब्राह्मण पुत्तन महाराज अपने पुत्र के साथ हुए झगड़े का बदला रामबोला की टूटी–फूटी झोंपड़ी को ध्वस्त करके लेता है। रही सही कसर प्रकृति पूरी कर देती है। झोंपड़ी में आग लग जाती है और रामबोला फिर से अकेला हो जाता है।

इसके बाद बालक रामबोला भटकता–भटकता सूकरखेत पहुँचता है। वहाँ पहुँचकर एक हनुमान मंदिर में शरण लेता है। उसकी साफ–सफाई करता है। वहाँ चढ़ने वाले प्रसाद

BHDC-109_4th proof.indd 176 8/6/2021 2:09:10 PM

को बंदरों से साझा करके गुज़ारा करता है। एक दिन बाबा नरहरिदास वहाँ आते हैं जो उसे अपनी छत्रछाया में स्वीकार कर लेते हैं। बाबा उस बालक को अपने साथ अयोध्या ले आते हैं जहाँ अन्य बालकों के साथ रामबोला का पंच–संस्कार होता है। संस्कार के दौरान माथे पर तुलसी का एक पत्ता आ गिरता है। बाबा इसे ईश्वर का संकेत समझ बालक रामबोला का नाम तुलसीदास रख देते हैं। अब रामबोला को न केवल रहने के लिए एक घर मिल जाता है अपितु एक नई पहचान और नया नाम मिलता है। बाबा कुछ समय के बाद उसे शेष सनातन की पाठशाला में छोड़ आते हैं। जहाँ पर तुलसीदास शिक्षार्जन के साथ–साथ घर के काम भी करता है। गुरु माँ का विशेष अनुराग तुलसी को प्राप्त होता है तो साथी बटुकों की ईर्ष्या भी तुलसीदास को मिलती है। लगभग तेरह वर्ष की आयु में बालक तुलसी अपने सहपाठियों से रात के समय श्मशान में जाने की शर्त लगा लेता है। यद्यपि वह रात के अँधेरे में श्मशान जाने के भय से काँप रहा होता है परंतु उसे अपने इष्ट हुनमान में दृढ़ आस्था होती है, इसीलिए बालक तुलसी 'हनुमान चालीसा' लिखते हैं जो उसके अनुसार भय से मुक्ति में उनकी सहायक होती है। बालक तुलसी यह शर्त जीत लेता है।

समय बीतता जाता है और शिक्षा के पूरी होने के बाद तुलसी वहीं पाठशाला में शिक्षक हो जाते हैं। इस समय युवा तुलसी का मन नई तरंगों से तरंगायित होने लगता है। वे लाख प्रयास करते हैं कि उनका मन राम–भक्ति में ही रमे परंतु चंचल मन नहीं मानता। एक बार मेघा भगत के यहाँ नगर के कोतवाल की रक्षिता मोहिनी से तुलसी का परिचय होता है और तुलसीदास मोहिनी को अपना मन दे बैठते हैं। सोते–जागते, उठते–बैठते, पढ़ते–पढ़ाते सभी जगह पर उन्हें मोहिनी ही दिखाई देती है। तुलसी, मन में राम को बैठाने की कोशिश करते हैं परंतु मोहिनी का रूप उन्हें बार–बार अपनी ओर खींचता है। वे मोहिनी से मिलने के बहाने ढूँढ़ते हैं तो मोहिनी भी उनसे मिलने के रास्ते खोजती है। पर जल्द ही तुलसी इस ऊहापोह से बाहर आते हैं और राम की तलाश में मेघा भगत और मित्र कैलाश के साथ तीर्थ पर निकल जाते हैं। रास्ते में वे मुगल सेना द्वारा बंदी भी बनाए जाते हैं। वहाँ से अपनी ज्योतिष विद्या का प्रदर्शन करने के बाद वे छूट कर विक्रमपुर आते हैं और वहीं रहकर कथावाचन और ज्योतिष कार्य प्रारम्भ करते हैं।

कथा का मध्य– कथा के मध्य में तुलसीदास की ख्याति आस–पास फैल जाती है। उनसे मिलने अनेक बड़े लोगों के साथ–साथ कुछ महिलाएँ भी आती हैं जो युवा तुलसीदास को बेचैन करती हैं। इससे बचने के लिए मित्र राजा भगत उनको विवाह के लिए तैयार कर लेते हैं और तुलसीदास का विवाह सुंदर और सुशिक्षित रत्नावली के साथ हो जाता है। रत्नावली उनके जीवन में एक स्थायित्व लेकर आती हैं। उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति होती है जिसका नाम तारापति रखा जाता है। एक तरफ तुलसीदास का मान–सम्मान बढ़ रहा था तो उनसे ईर्ष्या करने वाले भी बढ़ रहे थे। रत्नावली का भाई गंगेश्वर भी इनमें शामिल था इसलिए वह हमेशा तुलसी के कार्यों में हस्तक्षेप करता है। तुलसीदास उसे अपने घर न आने देने के लिए रत्नावली को आदेश देते हैं। परंतु रत्नावली इसे नहीं स्वीकारती तो वे स्वयं ही अन्यत्र जीविकोपार्जन के लिए घर से निकल पड़ते हैं और बनारस जा पहुँचते हैं।

बनारस में गुरु भाई गंगाराम के यहाँ ठहरते हैं और रामाज्ञा प्रश्न की रचना भी करते हैं। यहाँ पर गंगा राम की भरपूर सहायता करते हैं जिससे उन्हें काफी धन की प्राप्ति होती है। जिसकी हुंडी लेकर वे वापस घर आते हैं पर पता चलता है कि रत्नावली तो अपने पिता के घर हैं। वे उनसे मिलने की उत्कट इच्छा लिए आँधी–पानी के परवाह किए बिना रात में ही पहुँच जाते हैं। जहाँ गंगेश्वर उनका अपमान करता है। इसकी उपेक्षा कर तुलसी, रत्नावली से मिलते हैं तो रत्नावली पुरुष और स्त्री के प्रेम के अंतर को समझाती है और कहती है कि पुरुष तो निरे चाम का लोभी होता है जीव में बसे राम का नहीं।

BHDC-109_4th proof.indd 177 8/6/2021 2:09:10 PM

कथा का अंत– रत्नावली के इन वचनों से तुलसीदास का जीवन बदल जाता है और वे पत्नी और बच्चे को त्याग कर राम की तलाश में निकल पड़ते हैं और दिनों–दिन भटकते रहते हैं। तन और मन से अस्वस्थ तुलसी को रामकली सहारा देती है और तुलसी स्वस्थ हो जाते हैं। तुलसीदास की राम की खोज और तीव्र हो उठती है और वे चित्रकूट पहुँच जाते हैं और ब्रह्मदत्त के यहाँ ठहरते हैं। रत्नावली से एक और बार भेंट यहाँ होती है और पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर वे विचलित होते हैं। उनका मन फिर से पिघलने लगता है। वे रत्नावली का मोह त्याग कर जनकपुरी जा पहुँचते हैं जहाँ एक रामानुजी आश्रम में रहने के लिए जगह और मठ में कोठारी का काम मिलता है। वे यहाँ पर आकर देखते हैं कि धर्म के इन स्थानों पर लोभ, मोह, लालच और वासना का प्रसार है। उनका मन उकता जाता है। वे यहाँ रहकर राम भक्ति में लीन होना चाहते थे परंतु इस मार्ग में निरंतर बाधाएँ आती हैं। मठ में रहने वाले और आने वाले साधु मठ में आने वाली स्त्रियों के मोह पाश में बंधे मिलते हैं। स्वयं मठ के महंत भी इसमें आकंठ डूबे हैं। मठ के महंत से मतभेद के कारण तुलसी कोठारी का पद और मठ दोनों ही छोड़ देते हैं। वे वहाँ से निकल कर अयोध्या के जन–जीवन को और अधिक निकट से देखते हैं।

घाट पर एक वृद्ध ब्राह्मण की सहायता के लिए वे रामकथा का वाचन करना प्रारम्भ करते हैं। जनभाषा अवधी में राम की सुंदर कथा का वाचन वे अपने रचे दोहों और चौपाइयों में करते हैं और आम लोग अपनी भाषा में राम का कथा सुन कर आनंदित होते हैं। उनके रचे गए पद और अद्भुत प्रस्तुति से अयोध्या में जल्द ही उनकी ख्याति फैलने लगती है, जिससे वहाँ का पुरोहित समाज अप्रसन्न हो जाता है। यहीं से तुलसीदास को अपमानित और बदनाम करने के षड्यंत्र रचे जाने लगते हैं। यही नहीं वैदेहीवल्लभचरणरजधूलिदास, तुलसी कृत रामचरिमानस की मूल पोथी को चुराने का प्रयास भी करते हैं। तुलसीदास का मन इन घटनाओं से खिन्न हो जाता है और वे काशी प्रस्थान कर जाते हैं।

काशी में गुरु भाई गंगाराम और उनके मित्र टोडर जी की सहायता फिर से रामचरित मानस की रचना में लीन हो जाते हैं। उनका मन काशी में मात्र राम कथा की रचना में ही रमना चाहता है। वे रामचरितमानस के अंशों का पाठ भी करते हैं जो आम जन को बेहद पसंद आते हैं। रामबोला बाबा की ख्याति फैलने लगती है तो काशी के पंडा–पुरोहित समाज के रविदत्त, बटेश्वर मिश्र जैसे कुछ रूढ़िवादी लोगों को लगता है कि यह तो जनसाधारण के मन से ही उन्हें हटा देगा। ये लोग बाबा को बदनाम करने के लिए निरंतर षड्यंत्र करते हैं। एक बार तथाकथित निम्नकुलोत्पन्न व्यक्ति एक दुराचारी ब्राह्मण की हत्या कर उनकी शरण में आता है तो बाबा तुलसीदास मनुष्यता के नाते न केवल उसकी कहानी सुनते हैं अपितु उसको भोजन भी कराते हैं। वास्तविकता को छिपा कर तुलसीदास के शत्रु उनके बारे में मिथ्या प्रचार करते हैं कि तुलसीदास ब्रह्महत्यारों को पनाह देता है। परंतु जनता, बाबा के विषय में चलाए गए इस मिथ्या प्रचार को नकार देती है। इन सारी मानसिक–शारीरिक और सामाजिक विघ्न बाधाओं के बीच तुलसीदास अपना महान ग्रंथ रामचरित मानस पूरा कर ही लेते हैं। मित्र गंगाराम और टोडर जी के आग्रह से लोलार्ककुंड में वैष्णव मठ में गोस्वामी का पद स्वीकार कर लेते हैं। पर यहाँ की राजनीति भी उन्हें रास नहीं आती। वे गोस्वामी का पद त्याग कर अस्सी घाट पर रहने लग जाते हैं। देव नदी गंगा के सान्निध्य में उनको चैन मिलता है और वे रामकथा प्रसार करने के लिए जगह–जगह रामलीला का प्रदर्शन कराने लगते हैं। उनकी प्रेरणा से जगह–जगह अखाड़े खोले जाते हैं जहाँ बजरंगबली की मूर्तियों की स्थापना होने लगती है। यहाँ महाकवि तुलसीदास जी मात्र धर्म का उपदेश देने वाले कोरे उपदेशक नहीं रहते बल्कि समाज सेवा के महती दायित्व को भी वे उठाते हैं। जब नगर, प्लेग जैसी महामारी की चपेट में आता है तो उनकी प्रेरणा

BHDC-109_4th proof.indd 178 8/6/2021 2:09:10 PM

से अनेक युवा दुखियों–रोगियों की सेवा के लिए निकल पड़ते हैं। उनके इन कामों से उनकी ख्याति इतनी बढ़ती है कि स्वयं अकबर के नवरत्नों में से एक अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना उन्हें अकबर के दरबार में मनसबदारी दिलाने की पेशकश कर देते हैं जिसे अपने वैरागी स्वभाव के कारण तुलसीदास स्वीकार नहीं करते।

जहाँ एक ओर तुलसीदास अपने 'मानस' से ख्याति पा रहे थे वहीं दूसरी ओर उनका शरीर अनेक व्याधियों से ग्रस्त होता जा रहा था। शरीर में जब–तब निकलने वाली गिल्टियों से उन्हें असह्य पीड़ा होती थी। उनका शरीर अब साथ नहीं दे रहा था। वे रामू और बेनीमाधवदास के साथ राजापुर आते हैं जहाँ उनकी पत्नी रत्नावली अंतिम साँसें गिन रही थी। वे रत्नावली को मुक्ति दिलाकर कुछ दिन वहीं उसी घर में रहते हैं। वे अनेक स्मृतियों में डूबते उतराते हैं। कुछ समय बाद वे चित्रकूट से होते हुए काशी आ जाते हैं। जहाँ उन्हें रखने के दोष में टोडर जी पर तुलसी विरोधियों का हमला होता है जिसमें टोडर जी मारे जाते हैं। तुलसी इस प्रकरण से बेहद उदास हो जाते हैं।

जीवन भर तुलसीदास को यह मलाल रहा कि उन्हें हुनमान, सीता, भरत लक्ष्मण सब दिख जाते हैं परंतु राम उन्हें दर्शन नहीं देते। एक दिन उन्हें उनके आराध्य देव राम दर्शन देते हैं और भेंट स्वरूप चढ़ाई गई 'विनय पत्रिका' को स्वीकार कर लेते हैं। श्रावण माह की कृष्ण तृतीया को तुलसी इस संसार से विदा लेते हैं। उनके कवि मित्र कैलाश एक दोहा पढ़ते हैं–

रामनाम जस बरनि कै, भयौ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सोन।।

बोध प्रश्न–1

क) उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

1. तुलसीदास का जन्म ..... में हुआ?
2. तुलसीदास के पिता का नाम ..... और माता का नाम ..... था।
3. तुलसीदास का लालन–पालन ..... ने किया।
4. तुलसीदास का नामकरण ..... किया।
5. तुलसीदास की शिक्षा गुरु ..... के सान्निध्य में हुई।

ख) एक शब्द में उत्तर दीजिए–

1. युवा तुलसीदास को किससे प्रेम हुआ?

   .....

2. तुलसीदास की पत्नी का क्या नाम था?

   .....

3. तुलसीदास के पुत्र का नाम क्या था?

   .....

4. तुलसीदास ने रामाज्ञा प्रश्न की रचना किस स्थान पर की?

   .....

5. ''पुरुष तो निरे चाम का लोभी होता है जीव में बसे राम का नहीं।'' यह किसने कहा था?

   .....

BHDC-109_4th proof.indd 179 8/6/2021 2:09:10 PM

10.3 'मानस का हंस' के प्रमुख चरित्र

यहाँ हम 'मानस का हंस' के प्रमुख चरित्रों का संक्षिप्त परिचय ही दे रहे हैं। उपन्यास के चरित्रों की विशेषताओं के संदर्भ में आप विस्तार से अगली इकाई में अध्ययन करेंगे।

तुलसीदास

'मानस का हंस' उपन्यास के केंद्रीय चरित्र महाकवि तुलसीदास हैं और उपन्यास उनके गतिशील जीवन को प्रस्तुत करता है। वास्तव में महाकवि तुलसीदास के जीवन संघर्ष और व्यक्तित्व के दुर्बल–सबल पक्षों को उद्घाटित करना उपन्यासकार का मंतव्य रहा है। तुलसीदास उपन्यास के नायक हैं पर वे देवता की तरह नहीं मनुष्य की तरह चित्रित किए गए हैं। अभागे बचपन से प्रख्यात कथावाचक और अमर कृति रामचरित मानस के रचयिता तक की यात्रा उपन्यास में पूरी होती है। भक्त कवि के रूप में प्रतिष्ठित होने की यात्रा में तुलसी की सामान्य मनुष्य के रूप में अनेक लालसाओं–काम भावना से ग्रसित होना, अर्थ केंद्रित होना, यशःप्रार्थी होना, मोहग्रस्त होने आदि को भी उपन्यास में दर्शाया गया है। प्रवचन, अध्यापन और ज्योतिष के आधार पर तुलसी को ख्याति प्राप्त होती है।

रत्नावली

रत्नावली तुलसीदास की पत्नी हैं। रत्नावली इस उपन्यास में मात्र तुलसीदास की अनुगामिनी बनकर नहीं आती हैं अपितु वे एक स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्वामिनी भी हैं। तुलसीदास रत्नावली से प्रेम करते हैं और वास्तविक प्रेम का आधार मात्र शारिरिक सौंदर्य नहीं होता हैं। वह उससे कहीं आगे बढ़ा हुआ होता है। उपन्यासकार ने रत्नावली को एक साथ अपूर्व सौंदर्यवान और बौद्धिक अंकित किया है। वे एक कुशल गृहिणी, स्नेहिल माता, पति के प्रति समर्पित स्त्री और अपने ज्ञान से चकित करने वाली स्त्री है इसलिए अनेक बार बहस करने के बाद अंततः तुलसीदास वापस आते हैं।

मोहिनी

मोहिनी नगर कोतवाल की रक्षिता है। गायन कला में पारंगत मोहिनी मेघा भगत की सभा में भजन गायन के लिए आती है। यहीं पर युवा तुलसीदास उसके रूप और कला पर मोहित हो जाते हैं। अक्सर यह कह दिया जाता है कि अमृतलाल नागर ने मोहिनी के प्रेम प्रंसग को उपन्यास में लाकर गोस्वामी तुलसीदास के चरित्र पर लांछन लगाया है, परंतु कथा के पूरे वितान को देखें तो मोहिनी के चरित्र के आगमन से तुलसीदास का चरित्र धूमिल नहीं होता अपितु और उजागर होता है। वे अपने निजी जीवन के प्रेम के इस अंकुर से वैश्विक मानवता और न्याय के वृक्ष को बनाते हैं। मोहिनी भी युवा तुलसीदास के प्रति आकर्षित होती है। परंतु अपनी स्थिति को जानती भी है। तुलसीदास मोहिनी और राम के बीच निर्णय कर रामभक्ति का चुनाव करते हैं।

पार्वती अम्माँ

अभुक्तमूल नक्षत्र में उत्पन्न होने और माँ की मृत्यु के कारण तुलसी को स्वयं उनके पिता ने त्याग दिया था। अबोध बालक जिसके जीवन का ठिकाना न था, वह पार्वती अम्माँ को पाकर जी उठता है। पार्वती अम्माँ का महाकवि तुलसीदास के जीवन में अत्यधिक महत्त्व रहा है। पार्वती अम्माँ ममता की प्रतिमूर्ति हैं। वे बड़े जतन से बालक रामबोला का पालन करती हैं। पार्वती अम्माँ स्वयं दूसरों की दया पर निर्भर हैं परंतु रामबोला के लिए उनके मन में दया और करुणा का वास है। जब रामबोला यानी बालक तुलसीदास भिक्षा मांगने में होने वाले अपमान के बारे में कहता है तो पार्वती अम्माँ बालक को समझाती हैं कि यह अपमान और तिरस्कार सब कुछ तपस्या है। इससे ज्ञान की प्राप्ति

BHDC-109_4th proof.indd 180 8/6/2021 2:09:10 PM

होगी। जब बालक तुलसीदास को उच्च वर्णीय पुत्तन महाराज के द्वारा प्रताड़ित और अपमानित किया जाता है तब पार्वती अम्माँ ही बालक तुलसी का सहारा बनती है।

नरहरि बाबा

पार्वती अम्माँ की भाँति अबोध रामबोला को जीवन, धर्म, राम भक्ति, निर्भयता और ज्ञान का पाठ पढ़ाने वाले नरहरि बाबा बालक रामबोला के जीवन में एक देवदूत की भांति प्रकट होते हैं। पार्वती अम्माँ की मृत्यु के पश्चात रामबोला बेघर कर दिया जाता है। तब बाबा नरहरिदास ही थे जिन्होंने रामबोला को अपनाया था। रामबोला अपनी सेवा, प्रेम और प्रतिभा से नरहरि बाबा को अपना बना लेता है। वास्तव में नरहरि बाबा ही भिक्षा मांग कर अपना जीवन यापन करने वाले बालक रामबोला को तुलसी बनाते हैं। नरहरि बाबा दयालु, विनयशील, धर्मपरायण, स्नेही और विवेकशील हैं। नरहरि बाबा ही आचार्य शेष सनातन के आश्रम में बालक तुलसी की शिक्षा की व्यवस्था कराते हैं। वे तुलसी को एक पिता का स्नेह, शिक्षक का ज्ञान और मार्गदर्शक का निर्देशन और संत की अंर्तदृष्टि प्रदान करते हैं।

रामू

रामू द्विवेदी बाबा तुलसीदास का प्रिय शिष्य है। रामू बाबा की सेवा में दिन–रात लगा रहना चाहता है। तुलसीदास के जीवन में जो स्थान राम का है वही स्थान रामू के जीवन में तुलसीदास का है। रामू का पात्र उपन्यास में अपनी बाल सुलभ चचंलता, जिज्ञासा वृत्ति, प्रतिभा, सीखने की ललक से पाठक को अपनी ओर आकर्षित करता है। जिस प्रकार से निराश्रित रामबोला को नरहरि बाबा आश्रय देकर उसके जीवन को दिशा देते हैं वैसे ही रामू को बाबा तुलसीदास अपनी छत्रछाया में पालते–पोसते हैं। बाबा की सेवा करना जैसे रामू के जीवन का उद्देश्य बन जाता है।

बेनीमाधव

अमृतलाल नागर ने बेनीमाधव के चरित्र को अपनी कल्पना से साकार किया है। इतिहास में मूल गोसाईं चरित के रचयिता के रूप में उपस्थित बेनीमाधव इस उपन्यास में सर्वथा नए रूप में सामने आते हैं। उपन्यास में बेनीमाधव बाबा तुलसीदास के अनुयायी और शिष्य हैं। बेनीमाधव एक महान संत के भक्त हैं। बाबा तुलसीदास के साथ निरंतर यात्रा पर रहते हैं। रामचरित मानस की रचना के साक्षी बनते हैं। बेनीमाधव के जीवन में भक्ति और काम का द्वंद्व चलता रहता है। बेनीमाधव एक संत की भाँति जीना चाहते हैं। बेनीमाधव अपने इस द्वंद्व को भक्ति और श्रद्धा में तिरोहित कर देना चाहते हैं, परंतु उनका संघर्ष निरंतर चलता रहता है।

मेघा भगत

मेघा भगत कण–कण में अपने आराध्य राम को देखनेवाले हैं। उनकी राम भक्ति अद्भुत है। वे गुण ग्राहक हैं इसीलिए यह जानते हुए भी कि मोहिनी नगर कोतवाल की रक्षिता है वे मोहिनी को गायन के लिए सभा में आमंत्रित करते हैं। मेघा भगत के आश्रम के द्वार सभी के लिए खुले हुए हैं। वे तुलसीदास को खुले मन से स्वीकार करते है। ईश्वर भक्ति में लीन मेघा भगत एक प्रकार से युवा तुलसीदास को रामभक्ति में चुनौती देते हैं। मेघा भगत से प्रेरित होकर तुलसी अपना मन मोहिनी से हटाकर रामभक्ति में लगाते हैं।

अन्य पात्र

उपन्यास में अनेक अनेक पात्र कथा के सूत्र को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं इनमें से अनेक तुलसीदास के मित्र–सखा–बंधु हैं। जैसे बचपन के सहपाठी गंगाराम, राजा भगत, कवि मित्र कैलाश, और टोडरमल हैं। इन पात्रों माध्यम से तुलसीदास के व्यक्तित्व

BHDC-109_4th proof.indd 181 8/6/2021 2:09:10 PM

के अनेक पक्ष उभर कर आते हैं। मित्रों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहने वाले मित्र वत्सल तुलसीदास के समक्ष धन, समृद्धि और पुरस्कार कुछ भी नहीं। बाल सखा गंगा राम तुलसीदास के गुरु शेष सनातन के आश्रम में भ्रातृसम प्रेम देते हैं। टोडरमल तुलसीदास को अपना मित्र ही नहीं बल्कि आदर्श मानते हैं। वे उनके लिए कुछ भी कर सकते हैं। तुलसीदास का अपने इस मित्र के प्रति अटूट भरोसा है। टोडरमल तुलसी के लिए अपने प्राणों की आहुति भी दे देते हैं। राजा भगत तुलसीदास के ऐसे मित्रों में से एक हैं जो तुलसीदास को उचित परामर्श तो देते ही हैं पर उनकी आलोचना करने से भी पीछे नहीं हटते । तुलसीदास के गृह त्याग के पश्चात राजा भगत ही तुलसी दास की पत्नी रत्नावली की सहायता करते हैं।

मानस का हंस में अनेक पात्र ऐसे हैं जो तुलसी के समय की धार्मिक–सामाजिक परिस्थितियों को दिखाते हैं। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने आश्रमों, मठों और अन्य धार्मिक स्थलों में फैले पाखंड और अनाचार को दर्शाया है। धर्म, मर्यादा और नैतिक शुचिता के केंद्रों में स्वार्थी, भ्रष्ट लोगों की उपस्थिति किस प्रकार संस्थानों को नष्ट करते हैं। पुत्तन महाराज, बटेश्वर महाराज और तांत्रिक रविदत्त और वैदेहीवल्लभचरणकमलरजधूलिदास इसी प्रकार के पात्र हैं। ये पात्र निरंतर तुलसीदास को कष्ट देते हैं। ये सभी पात्र तुलसीदास की प्रसिद्धि, सम्मान और प्रतिभा से ईर्ष्या करते हैं। रविदत्त तुलसीदास को भस्म कर देना चाहता है और निरंतर उन्हें अपशब्द भी कहता है परंतु तुलसीदास निरंतर 'राम' में आस्था बनाए रखते हैं।

बोध प्रश्न 2

ग) तीन से चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

1. 'मानस के हंस' उपन्यास के तीन प्रमुख पात्रों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

.....

2. पार्वती अम्माँ के ममतामयी व्यक्तित्व का विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3. तुलसी के जीवन को रचने में सहायक किन्हीं दो पात्रों के योगदान की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

10.4 परिवेश

10.4.1 राजनीतिक परिवेश

'मानस का हंस' का परिवेश मध्यकालीन भारत का परिवेश है। इस उपन्यास के नायक गोस्वामी तुलसीदास के जीवन को यदि आधार मानें तो मानस का हंस का परिवेश

BHDC-109_4th proof.indd 182 8/6/2021 2:09:10 PM

तीन मुगल बादशाहों का समय है। मध्यकाल में भारतीय राजनीति में बड़े परिवर्तन आ रहे थे। लोदियों का शासन भारत में स्थापित हो चुका था। सन् 1526 में भारत में बाबर ने पानीपत के पहले युद्ध में इब्राहिम लोदी को हराकर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। बाबर के बाद सन् 1530 से 1556 ईस्वी तक हुमायूं और उसके बाद सन् 1556 ईस्वी से 1605 ईस्वी तक अकबर का शासन रहा। अकबर के बाद सन् 1605 ईस्वी से सन् 1627 ईस्वी तक बादशाह जहाँगीर का काल रहा है। हुमायूं के समय तक भारत में मुगल शासन स्थिर न था। राजनीतिक अस्थिरता के दौर में मुगल, पठानों से लड़ रहे थे। जब भी कोई नगर जीता जाता तो बड़े पैमाने पर लूटपाट होती। 'मानस का हंस' में अनेक स्थानों पर इस अस्थिरता के चित्र मिलते हैं। मुगल शासन को स्थिरता मिलती है, बादशाह अकबर के शासन काल में। मध्यकाल में अनेक प्रकार के राजनीतिक–सामाजिक समीकरण बन रहे थे। जिसमें हिंदू–मुस्लिम एकता और साझी संस्कृति के अनेक रूप दिखाई देते हैं। यद्यपि तुलसीदास हिंदू धर्म के सर्वाधिक सम्मानीय चरित 'राम' को अपनी लेखनी से शब्दों में उकेर रहे थे परंतु उनका अपने समय के मुस्लिम समुदाय से किसी प्रकार का बैर भाव नहीं दिखाई देता। मध्यकाल में राजपूत सत्ता के पतन के बाद पठानों और मुगलों के बीच संघर्ष चल रहा था। उपन्यासकार ने स्थानीय राजाओं और मुगलों के संघर्ष को धर्म की दृष्टि से नहीं अपितु सत्ता के संघर्ष के तौर पर देखा है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही बाबा नरहरिदास महंत जी से कहते हैं, '' राजनीतिक स्थिति अब तो सदा ऐसे ही रहेगी महंत जी। शेर खां आवे चाहे चीता खां। वस्तुतः धर्म–धर्म से नहीं लड़ रहा, यह बात अब सिद्ध है। नही तो पठान भला मुगलों से लड़ते।'' इसी प्रकार एक अन्य प्रसंग में जब देश में अकाल पड़ रहा था तब आम जनता इस बात की आशा कर रही थी कि हिंदू राजा जनता के लिए अपने खज़ाने और भंडार गृह खोल देगा, तब भी जनता को निराशा होती है। अकाल के समय हिंदू राजा हेमू से मदद माँगने के प्रश्न पर एक वृद्ध कहता है–''हिंदू! हः हः हः, अरे बाबा, हिंदू–मुसलमान तो हम–तुम पंच होते हैं। राजा राजा होता है। हेमू के हाथी चावल–चीनी और घी के लड्डू खा–खाकर मरने–मारने के लिए तैयार हो रहे हैं। वह बस लड़वइयों को ही भर–पेट खिला सकता है। हमारा कोई नहीं। राम भी नहीं।'' भूख और लाचारी के इस दृश्य से साफ है कि सत्ताओं को पहली चिंता उनकी सत्ता की होती हैं आम जनता की नहीं। चाहे वह हिंदू या फिर मुसलमान। अमृतलाल नागर तुलसीदास के जीवन के अनेक प्रसंगों से स्थापित करते हैं कि उनका व्यक्तित्व धार्मिक संकीर्णता से कहीं ऊपर था। बाबा तुलसीदास ने मुगल बादशाह अकबर का समय भी देखा था। वे जहाँगीर के समय से उस युग की तुलना करते हुए उपन्यास में एक स्थान पर वे कहते हैं, ''अकबरशाह के समय थोड़ा बहुत सुशासन आया था, अब वह भी समाप्त हो गया। शासक दिल्ली में रहता है। उसे नित्य हीरे, मोती, जवाहिर और सोना चाहिए। स्त्री और धन की लूट का नाम ही कलिकाल है। सारे पाप वहीं से प्रारम्भ होते हैं।'' महाकवि तुलसीदास का मानना था कि कलिकाल में शासक लुटेरे बन जाते हैं।

10.4.2 धार्मिक परिवेश

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखा है– ''धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान, और भक्ति इन तीन धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा में रहता है। किसी एक के भी अभाव में वह विकलांग रहता है। कर्म के बिना व लूला लँगड़ा, ज्ञान के बिना अंधा, और भक्ति के बिना हृदयहीन क्या निष्प्राण रहता है।'' लगभग यह स्थिति मध्यकालीन भारत में थी । धर्मिक पाखंडों और श्रेणीबद्ध ता ने अनेक पाखंडी, अनाचारी और अयोग्य व्यक्तियों को धार्मिक स्थलों के प्रबंधन में पहुँचा दिया था। उपन्यास में तुलसीदास जब अपने आराध्य राम की जन्मभूमि अयोध्या पहुँचते हैं तो पाते हैं कि इस धर्म नगरी में धर्म नहीं रह गया है। समाज के साधु वर्ग

BHDC-109_4th proof.indd 183 8/6/2021 2:09:10 PM

का एक हिस्सा मात्र अपने स्वार्थों की सिद्धि में लगा हुआ है। तुलसी अयोध्या आते हैं तो यह सोच कर आते हैं अपने आराध्य राम की पुण्य भूमि को जब वे देखेंगे तो पाएँगे कि पूरी पुण्य भूमि राममय है। वे उसी मठ में पहुँचते हैं कि जहाँ नरहरि बाबा बालक तुलसी को पंच संस्कार कराने के लिए आए थे। परंतु वे पाते हैं कि मठ में कोई साधु भांग घोट रहा है, कोई अन्य साधु पर लँगोटी चुराने का आरोप लगा रहा है तो कोई यजमान के यहाँ खाने में मिले माल पुए की प्रशंसा कर रहा है। तो तुलसीदास सोचते हैं, कि यहाँ किसी के ह्रदय में राम नहीं है। एक साधु उस मठ की वास्तविकता बताते हुए कहता है, ''हियां तो शब शाधू महात्मा तर माल चाभते हैं, और भगतनिन शे रशजोग साधते हैं। और ये शरऊ हियाँ ब्रह्मचर्य फैलइहैं। कलयुग का शतयुग बनावें चले हैं।'' यहाँ से निराश होकर जब तुलसीदास रामानुजी सम्प्रदाय के मठ में कोठारी बन जाते हैं तो और भी निकटता से मठों के भीतर को परिवेश को बहुत गहराई से देखते हैं। अपने इस अनुभव को तुलसीदास बतलाते हुए लिखते हैं, ''रामानुजी सम्प्रदाय के मठ में मैं कोठारी बन गया। महंत जी यों तो भले थे। कुशल, लोक–व्यवहारी थे। हाकिम–हुक्कामें, धनी मानियों से प्रायः मिलते–जुलते रहते थे परंतु चापलूसी बहुत पसंद करते थे। जो व्यक्ति उनके दरबार में बैठा रहे उनकी हाँ में हाँ मिलाता रहे, उनकी रक्षिता–प्रिया को सराहे और मान दे, वही उनका स्नेहभाजन बन सकता है।'' परंतु तुलसीदास कभी महंतजी की चापलूसी नहीं करते और न ही न उनकी रक्षिता–प्रिया छबीली के आदेशों का पालन करते हैं। जब महंत जी उन्हें अपमानित करते हैं तो वे आत्मसम्मान को बचाने के लिए मठ का त्याग कर देते हैं। परंतु समस्त धार्मिक समुदाय ही भ्रष्ट था ऐसा नहीं है। नरहरि बाबा, शेष सनातन और स्वयं तुलसीदास इस बात का प्रमाण हैं कि धर्म के वास्तविक रूप यानी दया, करुणा, परदुःखकातरता, उपकार, निःस्वार्थ सेवा जैसे भावों को जीने वाले तथा उनका प्रसार करने वाले अनेक संत उस समय में मौजूद थे। बाबा तुलसीदास ने तो महामारी के समय सामान्य जन की सेवा का बीड़ा उठाया था और तो और एक ब्राह्मण की हत्या करने वाले को क्षमा भी कर दिया था। धर्म यह व्यापक स्वरूप तुलसी के जीवन में साफ दिखाई देता है। समाज में हिंदू और मुस्लिम समुदाय के बीच एक साझा संस्कृति पनप रही थी। स्वयं तुलसीदास अयोध्या में मस्जिद में जाकर सोते हैं। उनका मानना था कि सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जाने वाले रास्ते हैं।

10.4.3 सामाजिक परिवेश

जातियों में बँटे समाज में मनुष्य–मनुष्य का भेद सांस्थानिक हो चुका था जिसे तोड़ पाना कठिन था। तुलसीदास के समय में यह भेद गहरा हो चुका था। समस्त मानव जाति को ईश्वर की सृष्टि मानने वाले धर्म के अनुयायी जाति व्यवस्था की अमानवीयता को सहज और प्राकृतिक मानकर स्वीकार कर रहे थे। मध्यकालीन भारत के सामाजिक ढाँचे का चित्रण करते हुए इतिहासकार सतीश चंद्र मिश्र लिखते हैं– ''औद्योगिक युग से पहले भारतीय समाज में जाति और वर्ग के बीच अच्छी खासी परस्पर व्याप्ति थी। हालाँकि प्रभुत्वशाली जातियों के लिए स्थानीय स्तर पर शक्ति प्राप्त करना और उसे बनाए रखना असम्भव न था, फिर भी मोटे तौर पर हम शासक जातियों, वणिक जातियों, दस्तकार जातियों और खेतिहर जातियों की बात कर सकते हैं। इनमें सबसे नीचे तथाकथित 'अशुद्ध' जातियाँ थीं और संतों की भावपूर्ण वाणी तथा धर्मांतरण के बावजूद इनकी दलित स्थिति में कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता।'' स्वयं तुलसीदास जिनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था, उन्हें भी परिवार द्वारा त्याग दिए जाने और गरीबी के कारण प्रताड़ित किया जाता है। उन पर कोई भरोसा नहीं करता कि वे एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे। 'मानस का हंस' मध्यकालीन भारत के धार्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के चित्रण करता है। उपन्यास या कहानी में

BHDC-109_4th proof.indd 184 8/6/2021 2:09:10 PM

मुख्य रूप से परिवेश आंतरिक और बाहरी होता है। परंतु इसमें भी उपन्यासकार सूक्ष्म रूप में स्थितियों, विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक घटनाओं और उनके माध्यम से बनने वाली नयी स्थितियों–मनःस्थितियों की सर्जना भी करता चलता है। अपने समय के राजनीतिक यथार्थ का अंकन भी वह परिवेश के आधार पर करता है। उदाहरण के तौर पर ''आधी रात का समय था। अचानक बड़ी जोर का हल्ला मचा। आहें, कराहें सुनाई देने लगीं। तुपकचियों की फटाफट और मशालों के चमकते हुए लुक्के जहाँ–तहाँ दिखलाई पड़ने लगे। लाठी, तलवार, बल्लम, गंडासे चारों ओर चल रहे थे। थोड़ी ही देर में वह गांव जिसमें कि हमने रैनबसेरा किया था मुगल सेना की एक टुकड़ी के कब्जे में आ गया। गांव का अन्न भंडार मुगलों की सम्पत्ति हो गया। छोटे–बड़े सम्पन्न–विपन्न सभी प्रकार के ग्रामवासी नर–नारी मुगलों द्वारा बंदी बना लिए गए। मेघा, तुलसी और कैलास की भी वही दशा हुई। सवेरे पता चला कि मुगलों की बेगमों और सरदारनियों के खेमें युद्ध क्षेत्र से दूर इस गांव में लगाए गए हैं।''

10.4.4 आर्थिक परिवेश

मध्यकालीन भारत में एक तरफ सामंत वर्ग धन और सम्पदा को अपने सुख और ऐश्वर्य के साधन जुटाने के लिए कर रहा था तो दूसरी तरफ समाज का निम्न वर्ग दो जून की रोटी का भी तरस रहा था। सरकारी तंत्र की लूट निरंतर बरकरार थी। जब–जब कोई प्राकृतिक या अन्य आपदा आती थी तो समाज अभिजात्य आपदा से लाभ उठाने का काम करता था तुलसीदास कोई सामान्य भक्त कवि नहीं थे समाज की पीड़ा को न केवल उन्होंने देखा था अपितु स्वयं उस पीड़ा का अनुभव किया था। जब देश में आपदा का समय था तब तुलसीदास ने उस दशा में आम जन के संघर्ष को अपने काव्य में वर्णित किया–''खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि, बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी। जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस, कहैं एक एकन सों कहां जाई का करी?' ..... दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु! दुरित–दहन देखि तुलसी हहा कारी।'' तो दरिद्रता के दंश को तुलसीदास जानते थे। बचपन में स्वयं लोगों द्वारा अपमानित और प्रताड़ित किए जा चुके थे। उपन्यासकार अमृतलाल नागर इस पूरे प्रसंग में तुलसी की जनपक्षधरता और सामंत विरोधी तेवर को दिखाते हैं। एक अन्य प्रसंग में अमृतलाल नागर दिखाते हैं कि अकाल के समय में लोग अपनी बेटियों को बेचने के लिए मजबूर हो जाते हैं। यह उपन्यास दिखाता है कि तुलसी के समय में आर्थिक विषमता की खाई बहुत गहरी थी।

बोध प्रश्न 3

घ) लगभग आठ–आठ पंक्तियों में उत्तर दीजिए–

1. 'मानस का हंस' उपन्यास में आए राजनीतिक परिवेश को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

BHDC-109_4th proof.indd 185 8/6/2021 2:09:10 PM

2. 'उपन्यास में मुगलों का संघर्ष धर्म की दृष्टि से नहीं सत्ता लोलुपता और वर्चस्व की दृष्टि से दिखाया गया है'–युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 संरचना–शिल्प

प्रसिद्ध आलोचक वाल्टर बेसेंट ने कहा था कि–''उपन्यासकार को अपनी सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नही उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए, जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते रहते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि अधिकांश लोग अपनी आंखों से काम नहीं लेते।'' इस दृष्टि से देखें तो अमृतलाल नागर अपने उपन्यासों में निरंतर उस समाज का चित्रण करते हैं जो समाज उन्होंने देखा और भोगा है। यद्यपि एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर रचे गए इस उपन्यास की कथा के वितान में अनेक ऐसे पात्र आते हैं जिन्हें पाठक अपने आस–पास देखता है। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए उपन्यास सम्राट प्रेमचंद लिखते हैं–''उपन्यास–कला में यह बात बड़े ही महत्व की है कि लेखक क्या लिखे और क्या छोड़ दे। पाठक कल्पनाशील होता है। इसलिए वह ऐसी बातें पढ़ना पसंद नहीं करता है। वह यह नहीं चाहता कि लेखक सब कुछ खुद कह डाले और पाठक की कल्पना के लिए कुछ भी बाकी न छोड़े। वह कहानी का खाका–मात्र चाहता है, रंग वह अपनी अभिरुचि के अनुसार भर लेता है। कुशल लेखक वही है, जो अनुमान कर ले कि कौन–सी बात पाठक स्वयं सोच लेगा और कौन–सी बात उसे लिखकर स्पष्ट कर देनी चाहिए। कहानी या उपन्यास में पाठक की कल्पना के लिए जितनी ही अधिक सामग्री हो, उतनी ही कहानी रोचक होगी। यदि लेखक आवश्यकता से कम बतलाता है, तो कहानी आशयहीन हो जाती है; ज्यादा बतलाता है तो कहानी में मजा नहीं आता।'' अच्छे उपन्यास में कथा के अंतर्गत घटनाओं और पात्रों की उपस्थिति के औचित्य को प्रेमचंद एक महत्त्वपूर्ण कसौटी मानते हैं। 'मानस का हंस' में उपन्यासकार अमृतलाल नागर इस कसौटी को पूरा करने का प्रयास करते हैं। उपन्यासकार के पास तुलसी के जीवन से जुड़ी अनेक कथाएँ थीं परंतु विवेक से वे उन सभी कथाओं को उपन्यास में छोड़ देते हैं जिनका संबंध कथा के तार्किक विकास में बाधक हो। इसी प्रकार वे उन कथाओं को अवश्य रखते हैं जिनके साक्ष्य तुलसी साहित्य और इतिहास में मिलते हैं। अमृतलाल नागर ने प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग किया है। इस शैली में केंद्रीय पात्र कथा में घट रही घटनाओं का वर्णन करता है। इससे एक तरफ कथा में सत्यता बनी रहती है परंतु इससे यह भी आशंका रहती है कि कथा एक व्यक्ति द्वारा देखे गए समय का वर्णन है। वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी इस पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, ''प्रश्नोत्तर शैली में रचित होने से इस उपन्यास का तार टूटता रहता है। उपन्यास थोड़ा–बहुत फिल्मीकरण को ध्यान में रखकर लिखा गया है। 'फ्लैशबैक' इसके लिए उपयुक्त होगा लेकिन किसी घटना–संकुल महान कथ्य को सीधी कथन–शैली मे रचना ज़्यादा मुनासिब होता है। प्रश्नोत्तर शैली, फ्लैशबैक आदि

BHDC-109_4th proof.indd 186 8/6/2021 2:09:10 PM

अत्यंत परिचित और घटनापूर्ण कथा के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते। कथावस्तु के अभाव में ही इन 'कौशलों' से काम लेना उचित है।'' (कृति मूल्यांकन : मानस का हंस) तो इस प्रकार आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी प्रश्नोत्तर शैली को कथा कहने की सहूलियत तो मानते हैं परंतु उनका मानना है कि उससे कथा शैली को लाभ नहीं मिलता। अमृतलाल नागर एक सशक्त रचनाकार हैं इस सीमा के बावजूद 'मानस का हंस' महाकवि तुलसीदास के जीवन का एक रोचक और यथार्थपरक वृत्तांत प्रस्तुत करता है।

10.5.1 शैली

शैली से तात्पर्य किसी कार्य को करने के तरीके से लिया जा सकता है। अर्थात उपन्यासकार किन उपादानों का प्रयोग कर कथा को रोचक, प्रभावशाली, मर्मस्पर्शी तथा उद्देश्य के अनुसार बना पाया है। अमृतलाल नागर ने इस उपन्यास में हिंदी साहित्य के शलाका पुरुष तुलसीदास के जीवन को आधार बनाया है। इतिहास, साहित्य और कल्पना से निर्मित इस कृति में सामान्य ढंग का नैरेटर नहीं है, उसके स्थान पर अनूठा प्रयोग कर प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया गया है। जिसके अंतर्गत तुलसीदास के मित्र, भक्त और शिष्य बेनीमाधव, रामू, बकरीदी, राजा भगत सभी लोग बाबा तुलसीदास से उनके जीवन और संघर्ष के विषय में प्रश्न पूछते हैं। जिनका जवाब तुलसीदास देते हैं। अमृतलाल नागर सिनेमा की कला को जानते थे इसलिए उनके इस उपन्यास में फ्लैशबैक और स्वप्न दृश्यों का कुशल प्रयोग दिखाई देता है। तुलसीदास अपने जीवन के अनेक अनुभवों को जब बताते हैं तो वे मात्र घटनाओं का वर्णन मात्र नहीं कर रहे होते हैं अपितु वे अपने साथ पाठक को भी उसी युग में ले जाते हैं। पाठक जैसे उन सभी घटनाओं का साक्षी बन जाता है जो घटनाएँ तुलसीदास के जीवन में घटित हो रही होती हैं। इसी प्रकार से तुलसीदास और उनकी पत्नी रत्नावली के गृहस्थ जीवन के अंतरंग चित्र हैं जिनका वर्णन कर पाना उपन्यासकार के लिए सर्वथा अनुचित और अस्वाभाविक होता है इसलिए उनके लिए उपन्यासकार ने स्वप्न दृश्य निर्मित कर दिए हैं।

दृश्यों का वर्णन करने की अद्भुत क्षमता उपन्यासकार में उपस्थित है। उदाहरण देखिए– ''उस रात तुलसी जब सब कामों से छुट्टी पाकर अपना दिया लिए हुए ऊपर चला तो सीढ़ियों में ही हवा का ऐसा गूंज भरा थपेड़ा आया कि दीप की लौ झोंका खाकर बुझी–अब–बुझी जैसी हो गई। मन सहम उठा, राम–राम का जप स्वर में हल्की कँपकँपी के साथ तीव्र गतिशाली हुआ। बत्ती की लौ नन्हीं बूँद जैसी बन गई पर बुझी नहीं क्रमशः उसमें उजाला बढ़ने लगा। उस उजाले से बालक के चेहरे पर आत्मविश्वास का उजाला बढ़ गया।'' इस पूरे प्रंसग में उपन्यासकार ने एक बाह्य परिस्थिति का वर्णन किया है जिसमें बालक तुलसी अमावस्या की रात में हरिश्चंद्र मंदिर के घाट पर स्थित मंदिर में शंखघोष करने का साहस कर जाने का प्रण लेता है। बाल मन अपनी अनेक आशंकाओं से जूझता है और अपनी भक्ति और एकाग्रता से अपने भय पर विजय प्राप्त कर लेता है।

अमृतलाल नागर पात्रों के मनोविज्ञान को भली भाँति समझते हैं इसलिए पात्रों की मनोदशा का वर्णन करने के लिए वे मनोविश्लेषण का सहारा लेते हैं। युवा तुलसीदास के मोहिनी के प्रति आकर्षण और उससे दूर हटने के अंतर्द्वंद्व का यथार्थपरक चित्रण अमृतलाल नागर ने किया है। अमृतलाल नागर तुलसीदास के मानसिक द्वंद्व का सटीक चित्रण करते हुए लिखते हैं, ''मोहिनी झलक भर के लिए माँसल होकर उसकी आँखों के सामने उभर आई। मन की बाँछें खिल गईं। –'मोहिनी तुम चंदन हम पानी...नहीं राम!... नहीं! यह धोखा है। मैं जग को धोखा दे रहा हूँ। लोग समझे हैं कि मेरा राम विरह है। मुझे ऐसा ढोंग भी नहीं करना चाहिए। परंतु मन के भीतर वाला अतृप्त कामी तुलसी विद्रोह करता है। कहता है 'मोहिनी मुझे चाहती है। नगर की सर्वश्रेष्ठ गायिका, हाकिम के ऊपर भी राज करने वाली सलोनी प्रियतमा मुझे चाहती है।'' इस पूरे प्रसंग में तुलसी का मनोविज्ञान पूरी तरह दिखाई देता है।

BHDC-109_4th proof.indd 187 8/6/2021 2:09:10 PM

10.5.2 भाषा

भाषा एक सामाजिक उत्पत्ति है। अतः जब हम किसी रचना की भाषा की बात कर रहे होते हैं तो वास्तव में हम उस रचना में वर्णित समाज की भाषा की प्रकृति, संरचना और शिल्प पर बात कर रहे होते हैं। भाषा में रचना में वर्णित समाज बोल रहा होता है। जिस रचना की भाषा जितनी अधिक जीवंत और समाज के निकट होगी वह रचना उतनी ही अधिक यथार्थवादी और सजीव हो उठेगी। कबीर ने सच ही कहा था कि 'भाखा बहता नीर'। यानी जनभाषा बहती हुई नदी है जो समस्त समाज को जीवन प्रदान करती है। अमृतलाल नागर प्रेमचंद की परम्परा के रचनाकार हैं। पीड़ित, वंचित और उपेक्षित वर्ग की कथा को उनकी ही भाषा में व्यक्त करने वाले। भाषा की दृष्टि से देखें तो अमृतलाल नागर प्रेमचंद से आगे के रचनाकार हैं। हिंदी प्रदेश की विविध बोलियों, मुहावरों, लोकोक्तियों और प्रयुक्तियों को अमृतलाल नागर भली भाँति जानते हैं। वे पात्रों की भौगोलिक पृष्ठभूमि, भाषाई पार्श्व, सामाजिक–सांस्कृतिक पूँजी और मनोभावों के आधार पर भाषा का चुनाव करते हैं। ठेठ अवधी–ब्रज से लेकर उर्दू–फारसी के विस्तार में वे अपने पात्रों को बोलता हुआ दिखाते हैं। भावगत सूक्ष्म परिवर्तन से भाषा में परिवर्तन को अंकित करना अमृतलाल नागर को बखूबी आता है। सहज बोलचाल की भाषा में दर्शन की गम्भीर से गम्भीर बात को प्रस्तुत कर देने की कला अमृतलाल नागर को बखूबी आती है। चुस्त वाक्य रचना और वाक्य गठन उनकी भाषा की पहचान है। अमृतलाल नागर ने 'मानस का हंस' में पात्रानुकूल भाषा का चयन किया है। उपन्यास के प्रारम्भ में अवधी भाषा का रूप देखिए–'' भैया, तुम पूरे अंतरजामी हो। हमार जिउ जुड़ाय गया। अरे हम अपनी भौजी की असल चेली और चमत्कार देखिस निगोड़ी मैनो। अब हम कहैंगी कि हमरी खातिर भैया एसा भजन रुचि के सुनाइन कि सुनते एकदम हमार मोच्छ हुई गई। अरे हम तो तुम्हारी दया से तर गईं भैया। चलती बिरियाँ भौजी हमैं इन चरनन की सरग–सीढ़ी दे गईं।'' बालक तुलसी को प्रताड़ित करने वाले पुत्तन महराज की भाषा अपशब्दों से भरी हुई है जो उनके व्यक्तित्व को दर्शाती है।

मुस्लिम पात्रों की भाषा में उर्दू–फारसी के शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है। उदाहरण के लिए – अब्दुल्ला गिड़गिड़ाकर बोला–'' सरकार को मुबारकबाद देने आया हूँ। मुझे इस नजूमी ने बतला दिया था कि आप पर खुदा मेहरबान है तनिक भी आँच नहीं आएगी। मैं इसीलिए इनको आपकी खिदमत में ले आया हूँ। मगर वल्लाह तारीफ है उस हूजूर की दूरंदेशी की जो पहले ही से उन आने वाले खतरों को भाँप लेती है।'' पात्रानुकूल भाषा का एक और उदाहरण बांगला भाषी पंडित रविदत्त के प्रसंग में देखा जा सकता है, '' एक दिन पंडित रविदत्त सपत्नीक दर्शन करने आया। दोनों ने साष्टांग प्रणाम किया। रविदत्त बोला–'' आम हमें खोमा कर दीजिए बाबा। हाम जोगदम्बा त्रिपुर–शुंदरी के आदेश का ओबमानना किया, उशका दंड भोगा। हामार आर्धांगिनी भी हामको माना कोरता रहा, परंतु हामको जोन्मजात क्रोध बहुत बेशी रहा महाराज। शाब लोग हामको आपका बिरुद्ध भोड़का दिया। हामशे बेड़ो–बेड़ो आपराध हुआ महाराज।'' इसी प्रकार आचार्य शेष सनातन की पाठशाला में मराठी छात्र मराठी भाषा का प्रयोग करता दिखता है। उदाहरण देखिए, '' खर आहे । ते मी विसरलोच हो तो। ...हमकूं चौक जाना है... नको। तुम्हीं ज्ञानाची रोटी आणि ज्ञानाची डाल खाओ।'' उपन्यास में शिक्षित वर्ग और तथा आम जनता की भाषा के विविध रूप देखने को मिल जाते हैं।

उपन्यास की भाषा की एक और विशेषता उसकी भावानुकूलता है। जिस प्रकार से कथा में पात्रों के भाव परिवर्तित होते हैं वैसे–वैसे भाषा में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण का प्रवेश होता जाता है। तुलसी–मोहिनी प्रेम प्रसंग हो या फिर रत्नावली के प्रति तुलसीदास का प्रेम हो उपन्यासकार ने इस सदंर्भ को ध्यान में रखते हुए शब्दों का चुनाव किया है। इन दृश्यों में भाषा काव्यमयी हो उठती है। उपन्यासकार पात्रों के

BHDC-109_4th proof.indd 188 8/6/2021 2:09:10 PM

मनोभावों का चित्रित करने में सक्षम है। विशेषतः उस दृश्य को देखिए जब रत्नावली तुलसीदास से कहती है कि ''पुरुष तो निरे चाम का लोभी होता है राम का नहीं' तो स्वयं रत्नावली का पश्चाताप सहज ही उभर कर आता है और तुलसीदास जैसे निद्रा से जाग उठते हैं। बाह्य परिवेश प्रकृति परक भावगत् उद्दीपन में सहायक होता है। जिसमें रूपक और उपमा अलंकार का वैशिष्ट्य समाहित रहता है। इसके साथ ही भाषा भावगत सौंदर्य को प्राकृतिक बिंबों के माध्यम से व्यक्त कर रही है– ''बादल ऐसे गरज रहे हैं मानो सर्वग्रासिनी काम क्षुधा किसी संत के अंतर आलोक को निगलकर दंभ–भरी डकारें ले रही हो। बौछारें पछतावे के तारों–सी सनसना रही हैं।...बीच–बीच में बिजली भी वैसे ही चमक उठती है जैसे कामी के मन में क्षण भर के लिए भक्ति चमक उठती है।'' इस पूरे प्रसंग में उपन्यासकार ने गद्य में काव्य की सृष्टि कर दी है। परिस्थिति का मनोवैज्ञानिक प्रभाव उसके बिम्बों से और अधिक उभर कर आता है। अमृतलाल नागर उपमाओं का सहजता से प्रयोग करते हैं तथा उपयुक्त व सटीक उपमाओं का प्रयोग करते हैं। जैसे –'' है तो बाबा यह रामू चौदह–पंद्रह बरस का लड़का ही पर ऐसा तेज और फुर्तीला है कि जब आपके सामने आवेगा तो आप ही कहेंगे कि वाह जटा शंकर क्या ततैया भिड़ छांट के लाए हैं। गोसाईं जी ततैया भिड़ की उपमा सुनकर हंस पड़े।''

लोक से जुड़े अनेक भाषा प्रयोग उपन्यास में सहज ही आ जाते हैं। जैसे ज्यौनार, कटाकुज्झ, गुहार, बिटोना, ठलुहाई, मजूरे का पिसान आदि। उपन्यास की विषयवस्तु की भाँति शब्द सम्पदा भी समृद्ध है। तत्सम, तद्भव देशज और विदेशी सभी प्रकार के शब्द उपन्यास में आए हैं। सान्निध्य, अजस्र, निष्काम, मृग मरीचिका, त्रिकालज्ञ, वातचक्र जैसे तत्सम शब्द; तिलक उलक, गिरौ नछत्तर ब्याह जनेऊ, गरीब–गुरबे जैसे तद्भव शब्द और नजूमी, मुबारक, मुश्तरी, क़नीज़, पेश्तर, जुदा जैसे विदेशी शब्द उपयुक्त पात्रों व परिस्थितियों में प्रयुक्त हुए हैं। लोकशब्दों के प्रयोग का उदाहरण देखिए–''बेटे के साथ आती प्रिया को देखकर तुलसी पंडित का हिया हरख उठा। बच्चे का गोद में लेने के लिए वे एक बार उचके, फिर पराए घर का विचार करके थम गए।...चोला मदमस्त हो गया। ढिबरी का प्रकाश दहलीज़ की ओर बढ़ते हुए अब दूर हो गया''।

10.5.3 लोकोक्तियाँ और मुहावरे

लोकोक्तियाँ और मुहावरे भाषा को गहराई, गति और चमक प्रदान करते हैं। लोक जन जीवन से उभरी लोकोक्तियों और मुहावरों में समाज का अनुभव बोलता है। इस दृष्टि से भी 'मानस का हंस' एक विशिष्ट उपन्यास है। 'वटवृक्ष के नीचे दूसरा पौधा नहीं उगता', 'नया धोबी कथरी में साबुन', 'चार दिन की चांदनी फिर अँधेरा पाख है', 'बौना कभी चंद्रमा को छू सकता है' जैसी अनेक लोकोक्तियों से उपन्यास की भाषा सजी हुई है। गाल बजाना, भीगी बिल्ली, बांछे खिलना, तिगनी का नाच नचाना, नाक रगड़ना जैसे मुहावरे पात्रों की बातचीत सहज और अर्थ सभावनाओं से भरी बना देते हैं। जैसे उपन्यास में तुलसीदास कहते हैं, '' जिसके पैरों में बिवाइयां फटती हैं न वही दूसरों के दर्द को समझ सकता है। जीवन तत्व और है ही क्या।''

बोध प्रश्न 4

ङ) संक्षिप्त उत्तर दीजिएः

1. मानस का हंस की भाषा शैली की विशेषताएँ बताइये।

.....

.....

.....

.....

BHDC-109_4th proof.indd 189 8/6/2021 2:09:10 PM

2. उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है–उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

10.6 मूल्यांकन

10.6.1 रचनाकार की दृष्टि

किसी भी कृति का जन्म उस युग की किसी न किसी समसामयिक आवश्यकता या दबाव का परिणाम होता है। रचनाकार अनुभव करता है कि अतीत या फिर वर्तमान में कुछ ऐसे व्यक्तित्व, घटना, अथवा प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर समाज को एक नई दिशा दे सकता है इसीलिए वह किसी कृति की रचना करता है। 'मानस का हंस' की रचना कर अमृतलाल नागर ने हिंदी साहित्य की विशिष्ट विभूति तुलसीदास के जीवन संघर्ष, उपलब्धियों और चुनौतियों से हिंदी के पाठकों को परिचित कराया है। आमुख में लेखक ने स्वयं लिखा है कि फिल्म निर्माता–निर्देशक महेश कौल से चर्चा करते–करते उनके मन में तुलसीदास पर एक उपन्यास लिखने का विचार पनपा। हालाँकि वे स्वयं यह जानते थे यह एक कठिन और जोखिम भरा काम है। कठिन इस अर्थ में कि महाकवि के जीवन का प्रामाणिक वृत्तांत उपलब्ध नहीं है, अतः जीवन वृत्त को रचने के लिए कोई प्रामाणिक संदर्भ नहीं है और जोखिम भर इसलिए कि महाकवि की ख्याति मात्र एक साहित्यकार के रूप में नहीं है अपितु वे देश की बहुसंख्यक जनता के लिए संत हैं अतः उनके विषय या चरित्र–चित्रण में अधिक छूट लेना कहीं बहुसंख्यक जनता को रुष्ट न कर दे। इसलिए रचनाकार ने स्वयं महाकवि तुलसीदास के साहित्य को आधार बनाया है। 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' को आधार बना कर रचनाकार ने तुलसीदास के जीवन चरित को साकार किया है। अमृतलाल नागर का उद्देश्य गोस्वामी तुलसीदास को देवता की तरह नहीं अपितु एक असाधारण प्रतिभा सम्पन्न मनुष्य के रूप में चित्रित करना रहा है। उन्होंने आमुख में भी लिखा है कि उनका उद्देश्य चमत्कारी तुलसी से अधिक यथार्थवादी तुलसी की रचना करना है। अमृतलाल नागर ने इस कृति में प्रयास किया है कि तुलसीदास एक जीवित–सांस लेते और सामान्य जीवन के कष्टों, संघर्षों को झेलते हुए दिखाई दें। इस कृति में आप देखेंगे कि तुलसीदास जीवन के हर मोर्चे पर जीत हासिल नहीं करते। वे जीवन के अनेक अवसरों पर दिग्भ्रमित होते हैं। उदाहरण के लिए युवा तुलसी का अपनी प्रेमिका मोहिनी का पाने का प्रयास करना। यह बात स्पष्ट है संत, महात्मा तुलसीदास के विषय में यह कल्पना करना कि वे एक वेश्या से प्रेम करने लगे थे अनेक लोगों को स्वीकार नहीं होगी फिर भी रचनाकार ने यह प्रसंग उपन्यास में रखा है। वे लिखते हैं–'' उपन्यास में एक जगह मैंने नवयुवक तुलसी और काशी की एक वेश्या का असफल प्रेम चित्रित किया है। वह प्रसंग किसी तुलसी–भक्त को चिढ़ा सकता है लेकिन ऐसा करना मेरा उद्देश्य नहीं है।... मुझे लगता है कि तुलसी ने काम से ही जूझ–जूझ कर राम बनाया है। नासमझ जवानी में काशी निवासी विद्यार्थी तुलसी का किसी ऐसे दौर से गुज़रना अनहोनी बात भी नहीं है।'' तो यह स्पष्ट है तुलसीदास के जीवन का यथार्थवादी चित्रण करना रचनाकार अमृतलाल नागर कर उद्देश्य रहा है। इसी के साथ–साथ रचनाकार ने मध्यकालीन भारत के वर्गों–वर्णों में विभक्त समाज का यथार्थपरक चित्रण किया है। मध्यकालीन भारत में धर्म–समाज–राजनीति–और संस्कृति में व्यापक परिवर्तन आ रहे थे। ऐसे युग में सगुण और निर्गुण, राम और कृष्ण, प्रेममार्ग और ज्ञानमार्ग, शास्त्र और लोक,

BHDC-109_4th proof.indd 190 8/6/2021 2:09:10 PM

जनभाषा और संस्कृत जैसे परस्पर जुड़े और द्वंद्वात्मक युग्मों से भी तुलसीदास जूझ रहे थे इनको उजागर करना भी अमृतलाल नागर का उद्देश्य रहा है। रचनाकार की दृष्टि तुलसीदास के जीवन के उन प्रसंगों की ओर भी गई है जिनमें वे एक महान व्यक्तित्व की तरह उभर कर आते हैं जैसे दुर्भिक्ष या फिर महामारी के समय में अपने प्राणों की चिंता किए बिना समाज के पीड़ित लोगों की सहायता के लिए दलों को तैयार करना। यह कार्य करते दिखाकर अमष्तलाल नागर ने तुलसीदास के व्यक्तित्व को और अधिक व्यापक बना दिया है। उपन्यास में तुलसीदास स्वयं गरीबी, भूख, अपमान, सामाजिक विषमता, अन्याय और अत्याचार को झेलते हैं और अपनी प्रतिभा और श्रम से अपने लिए समाज में बड़ा स्थान बना पाते हैं।

10.6.2 शीर्षक की उपयुक्तता

उपन्यासकार अमृतलाल नागर अद्भुत प्रतिभाशाली रचनाकार थे। उनके सभी उपन्यासों के शीर्षक विशिष्ट अर्थ रखते हैं। चाहे 'अमृत और विष', 'खंजन नयन हो', 'नाच्यौ बहुत गोपाल' हो या फिर 'बूंद और समुद्र'। 'मानस का हंस' शीर्षक भी विशिष्ट अर्थ रखता है। 'मानस' शब्द के दो अर्थ हैं –पहला अर्थ 'मानस' यानी चित्त मन और मानसरोवर से है। दूसरा अर्थ रामचरित मानस से सम्बंधित है। पहले अर्थ के अनुसार यह कथा उस व्यक्ति की है जो मन या चित्त के मानसरोवर का हंस है। हंस के विषय में किंवदंती है कि उसमें नीर–क्षीर विवेक की क्षमता होती है। इस प्रकार 'मानस का हंस' का आशय चित्त के मानसरोवर में रहने वाले नीर–क्षीर विवेकी हंस से है। तो दूसरा अर्थ रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास से सम्बंधित है। उपन्यासकार ने जिस प्रकार उपन्यास की रचना की है उसके अनुसार रामचरित मानस में स्वयं तुलसीदास के मानस में स्थित रामभक्ति की अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यास में तुलसीदास स्पष्ट कहते हैं– '' जब जीवन का मूल्यांकन करने बैठा हूँ तो उसे भी सुना दूंगा। जीवन माला की प्रत्येक मंज़िल पर मुझे रामचरणानुराग मिला। अतः कथा मेरी न होकर भक्ति धारा के प्रवाह की ही है।'' इस प्रकार 'मानस का हंस' शीर्षक सर्वथा उपयुक्त है। यह शीर्षक कथा और नायक दोनों की प्रकृति के साथ न्याय करता है।

बोध प्रश्न 5

1. 'मानस का हंस' उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता बतलाइए।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. उपन्यास के शीर्षक से ध्वनित दोनों अर्थों को स्पष्ट कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

10.7 सारांश

इस इकाई में हमने भक्तिकाल के शिरोमणि कवि तुलसीदास के जीवन पर आधारित उपन्यास 'मानस का हंस' की कथा को संक्षेप में जाना। इस कथा में उन सभी पात्रों के

BHDC-109_4th proof.indd 191 8/6/2021 2:09:11 PM

योगदान को भी जाना जिन्होंने साधारण बालक रामबोला को संत, महाकवि तुलसीदास बनाया। अमृतलाल नागर ने अपने इस उपन्यास में तुलसीदास को एक मनुष्य के रूप में चित्रित किया है। तुलसीदास के जीवन संघर्ष के अनेक मार्मिक चित्र हमें देखने को मिले। हमने इस इकाई में उपन्यास में वर्णित तुलसीदास के युगीन परिवेश को भी जाना। इस इकाई में हमने उपन्यास की भाषा और शैली पर भी विचार किया है। शीर्षक की सार्थकता पर विचार करते हुए हमने जाना कि रचनाकार एक अनूठे व्यक्तित्व को पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं जो हंस की तरह नीर–क्षीर विवेकी है।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) रिक्त स्थान

1. राजापुर ; 2. आत्मा राम और हुलसी ; 3. पार्वती अम्माँ ; 4. बाबा नरहरि दास ; 5. शेष सनातन

ख) एक शब्द में उत्तर

1. मोहिनी; 2. रत्नावली; 3. तारापति; 4. बनारस; 5. रत्नावली

बोध प्रश्न 2

प्रश्न ग) के 1, 2 एवं 3 के उत्तर के लिए इकाई का भाग 10.3 देखें।

बोध प्रश्न 3

प्रश्न घ) के 1 एवं 2 के उत्तर के लिए इकाई का भाग 10.4 देखें।

बोध प्रश्न 4

ङ) प्रश्न 1 के एवं 2 के उत्तर के लिए इकाई का भाग 10.5 देखें।

बोध प्रश्न 5

प्रश्न 1 एवं 2 के उत्तर के लिए इकाई का भाग 10.6.2 देखें।

10.9 उपयोगी पुस्तकें

1. कृति मूल्यांकन : मानस का हंस : माधव हाड़ा (संपा.), राजपाल, दिल्ली
2. मानस का हंस : विश्ववारा, इतिहास शोध संस्थान, दिल्ली

BHDC-109_4th proof.indd 192 8/6/2021 2:09:11 PM

इकाई 11 'मानस का हंस' के चरित्र

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 चरित्र चित्रण की प्रविधियाँ

- 11.2.1 प्रमुख पात्र
- 11.2.2 गौण पात्र
- 11.2.3 उपन्यास में चरित्र–चित्रण की प्रविधियाँ

11.3 'मानस का हंस' उपन्यास के पात्र

- 11.3.1 प्रमुख चरित्र
- 11.3.2 अन्य महत्त्वपूर्ण चरित्र
- 11.3.3 गौण पात्र

11.4 उपन्यास के चरित्र संयोजन में लेखक की दृष्टि

11.5 सारांश

11.6 संदर्भ सहित व्याख्या

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

'मानस का हंस' महाकवि तुलसीदास का जीवन चरित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- 'मानस का हंस' के चरित्रों से परिचित हो सकेंगे;
- उपन्यास के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से परिचय प्राप्त करेंगे;
- उपन्यास के गौण पात्रों और उनकी तुलसीदास के जीवन में भूमिका को समझ सकेंगे; और
- उपन्यास के संयोजन के विषय में जान सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य को 'रामचरितमानस' जैसी अद्भुत कृति से समृद्ध करने वाले गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लोककंठ में विद्यमान है। उत्तर भारत के छोटे गाँवों–कस्बों से लेकर महानगरों तक में महाकवि तुलसीदास की यह कृति भक्ति, श्रद्धा और प्रेम से पढ़ी जाती है। प्रत्येक रचनाकार अपने युग की उपज होता है। जब हम किसी रचना को पढ़ रहे होते हैं तो हम न केवल रचनाकार के समय और समाज से परिचित होते हैं अपितु हम रचनाकार के जीवन–संघर्ष को भी उन रचनाओं में अनुभव कर पा रहे होते हैं। अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यास 'मानस का हंस' में मध्यकालीन भारत के महाकवि के जीवन को इतिहास, कल्पना, जनश्रुतियों और उनके साहित्य के आधार पर पुनर्सृजित किया है। इस कृति में हम एक साधारण मनुष्य को एक असाधारण कवि और संत के रूप में बदलते हुए देखते हैं और जान पाते हैं किस प्रकार एक साधारण व्यक्ति अपनी प्रतिभा, ज्ञान, साधना, श्रम, श्रद्धा और जिजीविषा के बल पर समाज में अपना अप्रतिम स्थान पा लेता है। इस इकाई में हम महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

उन चारित्रिक गुणों को जान पाएँगे जो रामबोला को तुलसीदास बनाते हैं। इस इकाई में हम उन सभी चरित्रों को जान सकेंगे जिन्होंने तुलसीदास के जीवन को सकारात्मक और नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। यह सभी चरित्र वास्तव में तुलसी के युग को पूर्णता देते हैं। एक पूरा का पूरा युग पाठकों–अध्येताओं के समक्ष सजीव रूप में उपस्थित हो जाता है।

11.2 चरित्र चित्रण की प्रविधियाँ

उपन्यास का विषय जितना महत्त्वपूर्ण होता है उतने ही महत्त्वपूर्ण होते हैं उसके चरित्र। बड़ा उपन्यासकार चरित्रों के माध्यम से यथार्थ के अंतर्विरोधों, संघर्षों, चरित्र के भीतरी और बाहरी द्वंद्वों को कथा में रचता है। कथा के चरित्रों का अपने समय और समाज से घर्षण कराता हुआ वह उपन्यास की ठोस आधारभूमि रचता है और अनेक आयामों में उपन्यास 'सभ्यता समीक्षा' का काम करता दिखलाई पड़ता है। चरित्र समय और कथा के साथ स्थिर हैं या गतिशील, यह भी उजागर होता है। चरित्रों के विकास और आंतरिक–बाह्य द्वंद्व से कथा न सिर्फ विस्तार पाती है बल्कि पाठक सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक परिवेश को परखकर उस समय का मूल्यांकन करता है जिसमें एक चरित्र संघर्षरत भूमिका में होता है। कथा आलोचक सुरेंद्रनाथ तिवारी ने कहा है–'' उपन्यास में पात्र वह मेरुदंड हैं जो समग्र कथा को जीवंतता प्रदान करता है। पात्रों के क्रिया व्यापार उनके निजी दृष्टिकोण और छोटी–छोटी बातें उपन्यास के विराट फलक को गति देती हैं।''

उपन्यास के पात्रों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

1. प्रमुख पात्र
2. गौण पात्र

11.2.1 प्रमुख पात्र

उपन्यास के उद्देश्य को सफलतापूर्वक गति देने और उसके कथात्मक ढाँचे को प्रभावित करने वाले पात्र प्रमुख पात्र कहे जाते हैं। उपन्यास का घटना–क्रम इनके कार्य–व्यापार से प्रभावित और संचालित रहता है। इनकी क्रिया और प्रतिक्रिया से कथा का विकास गहरे रूप से जुड़ा रहता है। ये कथा के ढाँचे में गुणात्मक परिवर्तन लाने वाले केंद्रीय पात्र कहलाते हैं।

11.2.2 गौण पात्र

औपन्यासिक ढाँचे में गौण पात्र प्रमुख पात्रों के साथ कथा के विकास में भूमिका निभाते हैं परंतु यह कथा के पूरे वितान में न तो उपस्थित रहते हैं न ही कोई निणर्यात्मक भूमिका निभाते हैं। प्रमुख पात्र यदि केंद्र में रहते हैं तो यह परिधि पर रहते हैं। मुख्य पात्रों के जीवन से इनका संस्पर्श कथा का विकास करता है। रस की शब्दावली में कहा जाए तो प्रमुख पात्र स्थायी भाव हैं और गौण पात्र संचारी भाव की भूमिका निभाते हैं।

11.2.3 उपन्यास में चरित्र–चित्रण की प्रविधियाँ

उपन्यास में चरित्र–चित्रण की प्रविधियों के विषय में आपको पाठ्यक्रम की इकाई 4 में विस्तार से जानकारी दी गई है। यहाँ संक्षेप में चर्चा करना उचित होगा।

विश्लेषणात्मक प्रविधि

उपन्यास के चरित्र के चित्रण की अनेक प्रविधियाँ हैं। उपन्यास में किसी चरित्र के गुण–अवगुण का मूल्यांकन उपन्यासकार स्वयं करता चलता है। पात्रों के जीवन की घटित घटनाओं को उपन्यास में रखने के बाद उपन्यासकार उक्त घटना के माध्यम

BHDC-109_4th proof.indd 194 8/6/2021 2:09:11 PM

से स्वयं किसी पात्र का विश्लेषण करता है तो यह चरित्र–चित्रण की विश्लेषणात्मक प्रविधि कहलाती है।

संवादपरक प्रविधि

चरित्र–चित्रण की इस प्रविधि के अंतर्गत उपन्यासकार स्वयं किसी चरित्र के विषय में अपनी टिप्पणी पाठकों को नहीं देता बल्कि चरित्रों के कार्य–व्यापार, उनके जीवन में घटित घटनाएँ और इनके साथ अन्य पात्रों के साथ समय–समय पर हो रहे उनके वार्तालाप पाठक को स्वयं पात्र के विषय में एक दृष्टि बनाने में सहयोग करते हैं। इन संवादों के माध्यम से ही पात्रों के गुण–अवगुण उजागर हो जाते हैं। जीवन के विषय में उनका दृष्टिकोण भी पाठक से छिपा नहीं रहता। अनेक कथा आलोचकों ने भी चरित्र चित्रण की इस संवादपरक प्रविधि के पक्ष में अपनी राय रखी है। विश्लेषणात्मक प्रविधि में जहाँ लेखक की राय प्राथमिक हो जाती है वहाँ संवादपरक प्रविधि में पाठक की राय अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण होती है। कथा–कौशल की दृष्टि से भी आलोचक संवादपरक प्रविधि को श्रेष्ठ मानते हैं।

मनोवैज्ञानिक प्रविधि

वस्तुजगत के प्रति प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिक्रिया में भिन्नता होती है। इस भिन्नता को अनेक बार व्यक्ति का स्वभाव, उसका परिवेश प्रभावित–संचालित करता है। बाहरी यथार्थ से प्रभावित होने वाले पात्रों के अंतर्जगत में झाँककर उनके मनोभावों के अनुसार उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने की प्रविधि मनोवैज्ञानिक प्रविधि कहलाती है। इस प्रविधि के सहयोग से उपन्यासकार अपने पात्र के भीतरी द्वंद्व, उसके चारित्रिक अंतर्विरोधों को उजागर करता है।

बोध प्रश्न 1

1. दो से तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए–

क) उपन्यास में चरित्र का क्या महत्त्व है?

.....

.....

.....

ख) चरित्र चित्रण की दो मुख्य श्रेणियों का अंतर बताइये।

.....

.....

ग) चरित्र चित्रण की मुख्य प्रविधियों का सामान्य परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

11.3 'मानस का हंस' उपन्यास के पात्र

'मानस का हंस' उपन्यास अनेक चरित्रों वाला उपन्यास है। इसीलिए अध्ययन की दृष्टि से हम चरित्रों को मुख्य पात्र और गौण पात्रों के रूप में जानेंगे। उपन्यास के प्रमुख चरित्रों में तुलसीदास, रत्नावली, मोहिनी और बेनीमाधव हैं। अन्य महत्त्वपूर्ण पात्रों में पार्वती अम्माँ, रामू, मेघा भगत आते हैं।

BHDC-109_4th proof.indd 195 8/6/2021 2:09:11 PM

11.3.1 प्रमुख चरित्र

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास एक ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व हैं और 'मानस का हंस' उपन्यास के केंद्रीय पात्र हैं। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा उनके आस–पास घूमती है। तुलसी के चरित्र की रचना में अमृतलाल नागर ने उनके साहित्य, जनश्रुतियों और इतिहास को आधार बनाया है। उपन्यास के आमुख में उन्होंने लिखा है–'' उपन्यास को लिखने से पहले मैंने 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' को खास तौर पर पढ़ा। 'विनयपत्रिका' में तुलसी के अंतर्संघर्ष के ऐसे अनमोल क्षण संजोए हुए हैं कि उसके अनुसार ही तुलसी के मनोव्यक्तित्व का ढाँचा खड़ा करना मुझे श्रेयस्कर लगा। 'रामचरितमानस' की पृष्ठभूमि में मानसकार की मनोछवि निहारने में भी मुझे 'पत्रिका' से ही सहायता मिली। 'कवितावली' और 'हनुमानबाहुक' में खास तौर से और 'दोहावली' तथा 'गीतावली' में कहीं–कहीं तुलसी की जीवन–झाँकी मिलती है। मैंने गोसाईं जी से सम्बंधित अगणित किंवदंतियों में केवल उन्हीं को अपने उपन्यास में स्वीकारा है जो कि इस मानसिक ढांचे पर चढ़ सकती थीं।''

अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण पिता द्वारा त्याग दिए जाने के बाद बालक तुलसी का बचपन अत्यंत कष्ट में बीतता है। बालक तुलसी का बचपन का नाम रामबोला पड़ा था। नामकरण की इसी कथा को बताते हुए उपन्यास में तुलसी कहते हैं–''पार्वती अम्माँ से यह अवश्य सुना था कि मैंने बोलना राम शब्द से ही आरम्भ किया था। भिखारिन की गोद में पला, भीख के हेतु सहानुभूति जगाने का साधन बनकर अपना चेतनाक्रम पानेवाला बालक भला और बोल ही क्या सकता था!'' इस तरह राम के नाम पर भिक्षा माँगने के कारण बालक तुलसी रामबोला कहलाया जाने लगा। नरहरि बाबा के स्नेह और गुरु शेष सनातन की देखरेख में शिक्षा पाकर अभागा रामबोला तुलसीदास का नाम प्राप्त करता है और धीरे–धीरे अपनी प्रतिभा से समाज में स्थान पाना प्रारम्भ कर लेता है। स्वाभिमानी, आराध्य राम में आस्था, प्रतिभा, साहस और न्यायप्रियता जैसे गुण तुलसी के चरित्र को आकर्षक बनाते हैं। जिजीविषा से भरपूर तुलसी तमाम विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य न खोने वाला चरित्र है। इतने सारे महान गुणों से भरपूर होने के बावजूद तुलसी का चरित्र दैवीय नहीं बनाया गया है। बिलकुल निजी संदर्भों में तुलसी उन सभी भावनाओं से अछूते नहीं हैं जो किसी भी सामान्य मनुष्य में हो सकती हैं। युवावस्था में तुलसी के जीवन में मोहिनी, राजकुंवरी और चम्मो सहुवाइन जैसे पात्र आते हैं जो उनके भीतर राम भक्ति और काम वासना व मोह के बीच द्वंद्व को उभारते हैं। रत्नावली से विवाह और उनके त्याग के पश्चात तुलसी मुक्त हो जाते हैं और रामचरित मानस जैसे महाकाव्य की रचना करते हैं। तुलसीदास, रत्नावली का त्याग तो कर देते हैं परंतु जीवन में भी यह भी अनुभव करते हैं कि कहीं न कहीं उनसे कुछ अन्याय अवश्य हुआ है। पर दुःखकातरता तुलसी के चरित्र का अभिन्न अंग है।

साहसी– रामबोला तुलसीदास का जीवन संघर्षशील रहा। उपन्यास उनके संघर्ष को निरंतर दर्ज करता है। एक अंधविश्वास के कारण त्याग दिए गए नन्हें से बालक के लिए जीवन की शुरूआत ही कठिनाई से भरी रही। जीवन की राहों पर स्वयं को जीवित रखने का संघर्ष किसी अन्य संघर्ष से कहीं अधिक कठिन था। ऐसे में साहस ही उनका सहारा रहता है। पार्वती अम्माँ के साथ द्वार–द्वार जाकर भिक्षा माँगते रामबोला को अनेक जगह दुत्कारा जाता है, अपमानित किया जाता है। पर वह साहस के साथ पुत्तन महाराज जैसे लोगों का डटकर मुकाबला करता है। पार्वती अम्माँ की मृत्यु के पश्चात तो रामबोला पूर्णतः एकाकी हो जाता है। उसके जीवन का संघर्ष और भी कठिन हो जाता है ऐसे में साहस के साथ वह संघर्ष करता है। नरहरि बाबा बालक के साहस

BHDC-109_4th proof.indd 196 8/6/2021 2:09:11 PM

और श्रम को देखकर प्रभावित होते हैं और आचार्य शेष सनातन की पाठशाला में प्रवेश दिला देते हैं। पाठशाला में अन्य सहपाठियों द्वारा रात के समय में मरघट वाले मंदिर में जाने की चुनौती दिए जाने पर बालक तुलसी घबराते नहीं और 'हनुमान चालीसा' की रचना कर चुनौती को साहस से पूरा करते हैं। इसी प्रकार मुगल फौज द्वारा बंदी बना लिए जाने पर भी तुलसीदास धीरज और साहस का परिचय देते हैं और अपनी ज्योतिष विद्या के बल पर न केवल अपने अपितु मेघा भगत और अन्य साथियों के प्राणों की रक्षा भी करते हैं।

महाकवि– अमृतलाल नागर ने इस उपन्यास में महाकवि तुलसीदास के विराट जीवन को दिखाया है। उपन्यास में एक साधारण मनुष्य की असाधारण कथा है। एक सामान्य मनुष्य से एक संत बनने की कथा। एक कवि के महाकवि बनने की कथा। यह कथा एक ऐसे कवि की है जिसका जीवन स्वयं संघर्षों और कठिनाइयों से भरा रहा परंतु उस कवि ने कभी हार न मानी। ऐसे कवि की हर रचना व्यापक जनसमाज के लिए ही होती है। उसका एक–एक शब्द व्यापक अर्थ से भरा हुआ होता है। उपन्यास दिखाता है कि किन परिस्थितियों में और किस प्रकार तुलसीदास ने हुनमान चालीसा, रामचरितमानस, कवितावली, कृष्णगीतावली, हनुमानबाहुक, दोहावली, पार्वतीमंगल जैसे जनप्रिय काव्यों की रचना की। इन रचनाओं की विशेषता यह भी है कि ये रचनाएँ आम जन की भाषा में रची गई हैं। अवधी और ब्रज में काव्य की रचना कर तुलसीदास ने महान आदर्शों और मूल्यों को जन–जन तक पहुँचाया। तुलसीदास अपनी इन रचनाओं से जन–जन में इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें संत की उपाधि मिली। आज भी लोक में उनकी रचनाओं के वाचन और पाठ आयोजित किए जाते हैं।

प्रखर कथावाचक– तुलसीदास मात्र एक कवि ही नहीं अपितु एक कुशल कथावाचक भी हैं। तुलसी के चरित्र का यह पक्ष इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि कथावाचन की इस कला के माध्यम से वे जनसमुदाय को सीधे सम्बोधित करते हैं। रामघाट पर बूढ़े पंडित की सहायता के लिए जब तुलसी कथावाचन करते हैं तो जनता खिंची चली आती है। तुलसी की इस कला को देख कर बूढ़ा पंडित कहता है– '' बेटा तुम तो बड़े मँजे हुए, बड़े ही सिद्ध कथावाचक हो! वाह, वाह आनंद आ गया। कैसी मधुर वाणी है कि वाह! सुंदर शुद्ध उच्चारण और भाव तो ऐसे हैं कि बस क्या ही कहैं। ये भाषा के कवित्त क्या तुम्हारे रचे हुए हैं या किसी और के?'' वृद्ध पंडित का आश्चर्य स्वाभाविक ही था। यह तुलसी का कथावाचक रूप ही था जिसके माध्यम से बाबा पूरे नगर भर में रामलीला का आयोजन करते हैं। अखाड़ों की स्थापना करते हैं। युवाओं में खेल और स्वास्थ्य के प्रति रुचि के साथ–साथ उनमें जनसेवा और भक्ति के आदर्श मूल्यों की स्थापना भी करते हैं।

स्वाभिमानी– तुलसीदास ने स्वयं लिखा है कि दरिद्रता से बड़ा कोई दुःख नहीं होता और दरिद्र अनाथ बच्चों का जीवन तो और भी कष्टपूर्ण होता है। पिता द्वारा त्याग दिए जाने के पश्चात बालक रामबोला, जिन्हें बाद में जाकर गुरु बाबा नरहरिदास के स्नेह से तुलसीदास नाम मिलता है, एक भिखारिन पार्वती अम्माँ के हाथ सौंप दिए गए थे। भिक्षा के लिए भगवान राम के भजन गाता बालक रामबोला जगह–जगह अपमानित और प्रताड़ित होता है। कहते हैं कि भूख के आगे सब लाचार हो जाते हैं परंतु बालक रामबोला पार्वती अम्माँ से स्पष्ट कह देता है कि ''अम्माँ अब हम कब्भी–कब्भी भीख नहीं मांगने नहीं जाएंगे।'' इसी प्रकार बेनीमाधव को बताते हुए बाबा तुलसीदास कहते हैं–''जाति–कुजाति, सुजाति के घरों से माँगे हुए टुकड़े खाते और अपमान सहते मैं उस जीवन से इतना चिढ़ उठा था कि अंत में किसी से भी भिक्षा न माँगने का निश्चय किया।...'' रामबोला, पार्वती अम्माँ की मृत्यु के पश्चात घर से बेघर कर दिया जाता है तब भी बालक अपने आराध्य राम के सेवक हनुमान से स्पष्ट कह देता है कि वह

BHDC-109_4th proof.indd 197 8/6/2021 2:09:11 PM

अब किसी और से भीख नहीं माँगेगा; माँगेगा तो केवल हनुमान से। वह मंदिर में चढ़ने वाली खोंची को वानरों के साथ साझा करता है पर किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। इसी प्रकार 'मानस का हंस' उपन्यास में एक और प्रसंग आता है जब तुलसीदास की पत्नी रत्नावली उन्हें उलाहना देती है कि "वह निरे चाम का लोभी है जीव में रमे राम का नहीं।" तो तुलसीदास जैसे जागृत हो उठते हैं और अपने आराध्य राम की खोज में पत्नी और बालक को त्याग कर घर से निकल पड़ते हैं। तुलसी के चरित्र का यह स्वाभिमान उन्हें सत्ता के सामने झुकने नहीं देता। उपन्यास में एक स्थान पर जब उन्हें अकबर बादशाह के दरबार में मनसबदार बनने का प्रस्ताव मिलता है तो वे स्पष्टता से उस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं।

न्यायप्रिय–तुलसीदास न्यायप्रिय हैं। बचपन से ही समाज में फैली आर्थिक–सामाजिक असमानता का विरोध तुलसीदास करते हैं। बचपन में जब पार्वती अम्माँ बालक तुलसीदास को समझाने का प्रयास करती हैं कि ये अपमान, कष्ट और समस्याएँ सब भगवान की मर्जी हैं तो बालक तुलसी विद्रोह करते हुए स्पष्टता से कह देता है कि वह कैसा ईश्वर है जो अन्याय को देखकर भी चुप है।

अकाल के समय भूख से मरते लोगों के लिए उनके मन में गहरी करुणा उत्पन्न होती है। तुलसीदास उपन्यास में कहते हैं– "मैंने इतने भयानक दृश्य देखे कि जी पक गया। इन अकालों का कारण इंद्र का कोप नहीं था बल्कि राम–समाज की ऐश्वर्य–लिप्सा थी। क्या हिंदू राजे–महाराजे, क्या मुगल पठान, सभी बड़े पाप–परायण हैं। उनकी चेतना से धर्म शब्द का ही लोप हो गया था। जो जितना बड़ा हाकिम उसे उतनी ही औरतों का रनिवास चाहिए। किसी की दस; किसी की पचास; दो सौ, पाँच सौ और दिल्ली के रनिवास में तो सुना कि पाँच हज़ार रमणियां थीं। इनके खरच के लिए नित्य प्रजा के प्राण खींचे जाते थे। राजा विलासी तो उनके चाकर उनसे भी दस हाथ आगे। खड़ी फसल काट ले जाएँ, गाय–बैल आदि पशु हाँक लें, कौन सा ऐसा आसुरी कर्म जो ये कर्मचारी नहीं करते।" इस पूरे प्रसंग में कथानायक तुलसीदास अपने समय के सामंती समाज का क्रूर चेहरा सामने रख देते हैं जो न केवल अनैतिक है अपितु जनविरोधी भी है। धर्म के नाम पर बँटे हुए शासक वर्ग के लोग शोषण और अन्याय के मार्ग पर एक साथ चलते हैं। तुलसीदास अपने आराध्य राम का जो रूप समाज के सामने रखते हैं वह आदर्श मनुष्य के साथ–साथ एक आदर्श शासक का भी है। इस प्रकार से वे एक आदर्श राज्य की दृष्टि भी समाज के सामने प्रस्तुत कर देते हैं। उपन्यासकार उनके इस रूप को विशेष रूप में उभारता है।

उदार– ईर्ष्या, द्वेष और दम्भ से दूर तुलसी अपने आस–पास के समाज को गहरे तौर पर प्रभावित करते हैं। क्षमा कर देने की उदारता के चलते अनेक बार तुलसी अपने उन शत्रुओं को भी क्षमा कर देते हैं जो उनकी मृत्यु चाहते हैं। बंगाली तांत्रिक रविदत्त, बटेश्वर मिश्र तथा अन्य शत्रुओं को वे अपनी विनम्रता से परास्त करते चलते हैं। तुलसीदास परदुःखकातर भी हैं। अकाल पीड़ितों के दुःख को देख कर बाबा तुलसीदास विचलित हो उठते हैं। काशी के महामारी प्रसंग में भी उनका यह रूप दिखाई देता है। वे परदुःखकातर भी हैं और परोपकारी भी। जन की भलाई के लिए वे सेवा भाव से संचालित होकर हनुमान दल बनाते हैं।

धर्मनिरपेक्ष–पंथनिरपेक्ष– मध्यकाल में सगुणोपासना और निर्गुणोपासना की दो पद्धतियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। जहाँ संत कबीर, रैदास, दादू, नानक निर्गुण ईश्वर की उपासना करते हैं तो सूर, तुलसी सगुण ईश्वर के उपासक माने जाते हैं। सगुण और निर्गुण का विवाद मध्यकाल में दिखाई देता है। यह माना जाता है कि जैसे दोनों एक–दूसरे के विरोधी हैं परंतु 'मानस का हंस' में तुलसीदास स्वयं इस बात को कहते हैं कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। एक स्थान पर वे कहते हैं–"खरी आलोचना

BHDC-109_4th proof.indd 198 8/6/2021 2:09:11 PM

करने में कबीरदास जी मेरे आदर्श हैं। जहाँ झूठ को देखा वहीं खींच के ऐसा झापड़ मारते थे कि थोथे अहंकार की चमड़ी उतर जाती थी। मैं महात्मा कबीरदास जी को उच्चतम आत्माओं में से एक मानता हूँ।" पर यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि उनका रास्ता कबीरदास जी से भिन्न अवश्य है। वे स्पष्टतः इस बात को रखते हैं कि उनके मन में दूसरे पंथ या धर्म को मानने वालों के प्रति किसी प्रकार का द्वेष या घृणा नहीं है। सभी पंथ और धर्म एक ही ईश्वर की आराधना का माध्यम भर हैं। इस पूरे प्रसंग में धार्मिक रूढ़ियों का प्रतिकार उनके चरित्र में दिखाई देता है। उपन्यास उनके इस गुण को एकाधिक स्थानों पर दर्शाता है। जैसे गृह त्याग के पश्चात जब तुलसीदास अयोध्या आते हैं तो मस्जिद में सोते हैं।

समाज संगठन–कर्त्ता– उपन्यास में गोस्वामी तुलसीदास एक महान समाज संगठन–कर्त्ता के रूप में स्थापित किए गए हैं। पूरे समाज को एकजुट करने के लिए वे निरंतर प्रयासरत रहते हैं। उपन्यासकार को महाकवि का यह रूप सर्वाधिक प्रिय है। वास्तव में यही कारण भी था कि अमृतलाल नागर महाकवि तुलसीदास पर उपन्यास लिखने का मन बनाते हैं। आमुख में उन्होंने स्पष्ट किया है कि उन्हें ये आश्चर्य था कि ऐसा क्यों है कि तुलसीदास मात्र एक स्थान पर रामलीला का आयोजन नहीं करते अपितु पूरे नगर भर में राम के जीवन से सम्बंधित खंडों को प्रदर्शित करते हैं? इसका उत्तर अमृतलाल नागर स्वयं देते हैं कि वह इसलिए क्योंकि तुलसीदास लोकधर्मी और समाज संगठन–कर्त्ता थे। रामकथा के प्रचार के माध्यम से समाज को एकता के सूत्र में बाँधना और समाज की सामूहिक शक्ति को एक दिशा देना उनका उद्देश्य था। 'अभिरुचि' पत्रिका के लिए अज्ञेय को दिए एक साक्षात्कार में अमृतलाल नागर कहते हैं– "तुलसी केवल संत नहीं था, केवल कवि नहीं था। वह समाज में बढ़ता भी था।" इसके अनुसार तुलसीदास समाज में मात्र रहते नहीं थे अपितु वे समाज में सामाजिक मूल्यों का प्रसार भी करते थे।

आस्थावान– उपन्यास में तुलसीदास का चरित्र पूर्णतः आस्थावान है। जीवन के प्रारम्भ से लेकर अंतिम समय तक तुलसीदास अपने आराध्य राम के प्रति पूर्ण आस्था रखते हैं। तुलसीदास मान कर चलते हैं कि उन्हें जो कुछ भी प्राप्त हुआ है वह सब कुछ उनके आराध्य के कारण ही मिला है। उपन्यास में दिखाया गया है कि जब उनके शरीर में गिल्टियाँ निकल आई थीं और वे भयानक पीड़ा से गुज़र रहे होते थे तब भी वे इस कष्ट के लिए 'प्रभु राम' को दोषी नहीं ठहराते। वे उनसे अपने कष्ट को दूर करने की गुहार भर लगाते हैं। सामाजिक तौर पर जब उन्हें प्रताड़ित किया जाता है तब भी वे आराध्य राम को न्याय करने के लिए कहते हैं।

मित्रवत्सल– तुलसीदास जीवन भर अपने मित्रों का साथ देते हैं। चाहे कैलाश हों या फिर गंगाराम; चाहे बकरीदी भैया हों या फिर राजा भगत, सभी के प्रति तुलसीदास का स्नेह अगाध है। जब गंगाराम को राजा जी अपने अपहृत पुत्र के विषय में सूचना देने के लिए कहते हैं तो तुलसीदास मित्र गंगाराम के संकटमोचक बन उनकी पूरी सहायता करते हैं। तुलसीदास के कहे अनुसार जब राजा का पुत्र सकुशल लौट आता है तब राजा जी गंगाराम को सवा लाख रुपया ईनाम में देते हैं। गंगाराम कृतज्ञतावश पूरा का पूरा ईनाम तुलसीदास को देना चाहते हैं। परंतु मित्रवत्सल तुलसीदास मित्र के इस आग्रह को अस्वीकार कर देते हैं। बड़ी कठिनाई से सवा लाख रुपए में से मात्र बारह हज़ार रुपए स्वीकार करते हैं।

रत्नावली

'मानस का हंस' महाकवि तुलसीदास का जीवनपरक आख्यान है। रत्नावली, तुलसीदास की पत्नी हैं। तुलसीदास के जीवन में रत्नावली का प्रवेश मानसिक, आर्थिक, भावात्मक, बौद्धिक और सामाजिक स्थिरता लेकर आता है।

BHDC-109_4th proof.indd 199 8/6/2021 2:09:11 PM

ओजस्वी और बुद्धिमती स्त्री–रत्नावली मात्र एक सुंदर स्त्री नहीं है बल्कि वह अपनी ओजस्विता में अनेक बार तुलसीदास को भी चुनौती देती है। रत्नावली ज्योतिष विद्या में पारंगत है। अपने पिता दीनबंधु पाठक के सभी दायित्त्वों का निर्वाह करती है। अक्सर उसे यह टीस होती है कि यदि वह लड़का होती तो पुरखों की गद्दी यों वीरान न होती। वह अपनी बौद्धिक विरासत के प्रति चिंतित दिखाई देती है। वह कहती है– ''मैं अभागी यदि पुत्र होती तो उन्हें कभी अपनी गद्दी की चिंता नहीं होती। अब कुछ भी कहा जाए, ज्योतिर्विद्यामार्तण्ड पाठकों की गद्दी उजड़ गई।''

सौंदर्य की राशि– रत्नावली के सौंदर्य का समग्र विवेचन उपन्यास करता है। वह रत्नावली के भीतरी–बाहरी सौंदर्य को उजागर करता है। उपन्यास में तुलसीदास न केवल रत्नावली के रूप पर मोहित होते हैं अपितु रत्नावली को अपनी राम काव्य–रचना का प्रेरक भी मानते हैं। उपन्यासकार ने रत्नावली के सौंदर्य का वर्णन करते हुए लिखा है– ''कंचन सा चेहरा, चेहरे पर आत्मतेज और वाणी में आत्मविश्वास की ऐसी दीप्ति थी कि तुलसीदास की आँखें शिष्टाचार भूलकर कुछ क्षणों के लिए रत्नावली के मुख को एकटक निहारने लगीं।'' इस पूरे वर्णन को यदि ध्यान से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मात्र कंचन सा चेहरा ही नहीं बल्कि आत्मतेज और वाणी का आत्मविश्वास भी रत्नावली को विशिष्ट बनाता है। यह आत्मतेज और आत्मविश्वास उसी व्यक्ति में हो सकता है जो ज्ञान और प्रतिभा से सम्पन्न हो। वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी इस संदर्भ में लिखते हैं– ''मानस का हंस की सबसे तेजस्वी पात्र रत्नावली है। लेखक ने तुलसी की पत्नी विषयक किंवदंती का उपयोग सावधानी और कौशल के साथ किया है।'' इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं कि लेखक ने प्रचलित किंवदंती के विपरीत रत्नावली के प्रति पाठकों को मृदु ही रखा है।

स्वाभिमानी स्त्री– रत्नावली के व्यक्तित्व में उसका सौंदर्य, कोमल पक्ष को ही सामने नहीं लाता अपितु उसके व्यक्तित्व के अनेक पक्षों को भी उद्घाटित करता है। यह स्त्री जीवन के प्रति अपने निष्कर्षों और निर्णयों में बेहद वस्तुनिष्ठ और तार्किक दृष्टि अपनाती है। जब तुलसीदास, रत्नावली के ममेरे भाई गंगेश्वर को घर आने के लिए मना करते हैं तो रत्नावली को बहुत बुरा लगता है। रत्नावली के लिए गंगेश्वर उनके पीहर का प्रतीक है इसलिए बेहद सख्ती से वे तुलसीदास को उत्तर देती हैं– ''आपने मेरे पीहर का अपमान किया है, मैं इसे नहीं सह सकती... पीहर का पक्ष लेना नारी–मन का नैसर्गिक न्याय है...पीहर का कुत्ता भी प्यारा लगता है, यह तो मेरा भाई है।'' इस सबके बावजूद रत्नावली के मन में तुलसीदास के प्रति अगाध प्रेम भी है। तुलसीदास से क्षमा माँगते हुए वह कहती है– ''जो भी हो मेरा सौंदर्य और मेरे सारे गुण अपनी पूरी शक्ति के साथ तुम्हें बांधते थे पर मेरा एक दोष बार–बार त्रिशूल की तरह तुम्हारे कलेजे में चुभता था। हाय नाथ मैंने तुम्हारे प्रति कितने पाप किए हैं।'' रत्नावली की यह स्वीकारोक्ति तुलसीदास के प्रति रत्नावली के स्नेह को दर्शाती है। पति के प्रति अगाध स्नेह के साथ–साथ रत्नावली एक कुशल गृहस्थ और माता भी है। पुत्र तारापति के लालन–पालन से लेकर घर–द्वार के सारे कार्य रत्नावली बड़ी कुशलता से पूरे करती है।

अमृतलाल नागर ने गोस्वामी तुलसीदास को देवता के रूप में नहीं बल्कि एक मनुष्य के रूप में चित्रित किया है इसलिए सहज मानवीय दुर्बलताएँ जैसे– मोह और काम उनके जीवन में लगातार बने रहते हैं। रत्नावली ही वास्तव में तुलसी को सारे प्रपंचों से हटाकर उनके आराध्य 'राम' के मार्ग पर लेकर जाती है। प्रेम के वशीभूत तुलसीदास जब आधी रात को बारिश में भीगते हुए ससुराल पहुँचते हैं तो पति के अपमान को न स्वीकारने के कारण रत्नावली तुलसीदास को ही ताना मार देती है कि '' स्त्री और पुरुष में यही तो अंतर होता है। नारी भले ही कामवश माता क्यों न बने किंतु माता बनकर वह एक जगह निष्काम भी हो जाती है। और पुरुष पिता बनकर भी दायित्त्व–बोध भली प्रकार से अनुभव नहीं करता। सच पूछो तो वह किसी के प्रति अपना दायित्त्व अनुभव

BHDC-109_4th proof.indd 200 8/6/2021 2:09:11 PM

नहीं करता। वह निरे चाम का लोभी है जीव में रमे राम का नहीं।" रत्नावली का यह कथन तुलसीदास को झकझोर देता है। वह स्वयं से प्रश्न करते हैं कि क्या यही है उनकी ईश्वर भक्ति? रत्नावली का यह ताना जैसे तुलसीदास को उनके जीवन के लक्ष्य की ओर ठेल देता है। वे सब कुछ को त्याग कर मात्र 'राम' के रास्ते पर चल पड़ते हैं। इस प्रसंग के बाद भी तुलसीदास के मन में रत्नावली के प्रति स्नेह समाप्त नहीं होता। वृद्धावस्था में रत्नावली का देहांत हो जाता है परंतु तुलसीदास, रत्नावली से किया अपना वादा निभाते हैं और पत्नी के अंतिम समय में मिलने पहुँच जाते हैं।

रत्नावली का चरित्र संयम, त्याग, स्वाभिमान, श्रद्धा और स्नेह से परिपूर्ण है। किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में यह चरित्र लोगों को कठोर और अहंकारी भी लग सकता है पर समग्रता में देखने पर इस धारणा का खंडन यह उपन्यास कर देता है।

मोहिनी

'मानस का हंस' के स्त्री पात्रों में मुख्य पात्र मोहिनी का है। नगर के कोतवाल की रक्षिता, और ईश्वर भजन–गायन में पारंगत मोहिनी युवा तुलसीदास के जीवन में यौवन, प्रेम और अनुराग का दीपक है। उपन्यास में युवा तुलसी के जीवन में मोहिनी की उपस्थिति महाकवि तुलसी को सहज रूप में प्रस्तुत करती है। तुलसीदास का मोहिनी के प्रति आकर्षण तुलसीदास के चरित्र को सहज मानव रूप में प्रस्तुत करने में सहायक है। तुलसीदास का मोहिनी से पहला परिचय मेघाभगत के यहाँ होता है, जहाँ भक्ति रस में डूबी मोहिनी भगवत् भजन के लिए आती है। मोहिनी का गायन और सौंदर्य युवा तुलसी को मोहित कर लेता है। तुलसी मेघाभगत की सभा में भक्ति के कारण नहीं बल्कि मोहिनी की वजह से जाते हैं। युवा तुलसी के मन में निरंतर एक द्वंद्व बना रहता है। एक तरफ जीवन में भक्ति का मार्ग तो दूसरी तरफ जीवन को उत्तेजना, प्रेम और रस से भर देने वाली मोहिनी के दर्शन। तुलसी का मन निरंतर मोहिनी की ओर भागता है तो राम भक्ति अपनी ओर खींचती है। अमृतलाल नागर ने युवा तुलसी की इस बेचैन मनःस्थिति का वर्णन बहुत गहराई से किया है। मोहिनी भी युवा तुलसी की तरफ आकर्षित होती है। वह कहती है–''कितना सुंदर चेहरा है। ये सपन भरी बड़ी–बड़ी काली पुतलियों वाली आम की फाँकों जैसी आँखें, ये लम्बी सुतवाँ नाक, ठोड़ी रोएंदार, जवानी–भरा भोलाभाला सुहाना मुखड़ा, ये कसरती बदन....हाय गाता भी खूब है।'' तो तुलसी का आकर्षण एकतरफा नहीं है। मोहिनी और युवा तुलसी की यह प्रणय लीला किसी से छिपी नहीं रहती है। सभा में आए हुए लोग भी उनके विषय में चर्चा करने लगते हैं। यह चर्चा तुलसी को भी सुनाई पड़ती है। वह मोहिनी से मिलने सभा में जाना बंद कर देते हैं। मोहिनी का रूपाकार्षण इतना अधिक है कि तुलसी मोहिनी की दासी से संदेश मिलने के पश्चात फिर से मोहिनी से मिलना स्वीकार कर लेते हैं। मोहिनी का जीवन एक बंदी का जीवन है। बूढ़े कोतवाल के चंगुल में फँसी मोहिनी तुलसी की सहायता से वहाँ से मुक्ति चाहती है पर उसे इस बात का भी ज्ञान है कि यहाँ से निकलने के बाद कोतवाल उन दोनों को कभी भी पकड़ सकता है।

बेनीमाधव दास

'मानस का हंस' में बेनीमाधव दास इतिहास और कल्पना से सृजित पात्र हैं। महाकवि तुलसीदास की जीवनी के लेखक बेनीमाधव दास का अधिक परिचय इतिहास में नहीं मिलता परंतु उपन्यास में निरंतर बेनीमाधव दास की उपस्थिति बनी रहती है। बेनीमाधव अपने गुरु तुलसीदास के पदचिह्नों पर चलना चाहते हैं। राम की भक्ति में पूर्ण लीन रहना चाहते हैं, परंतु राम की भक्ति और जीवन के सांसारिक सुख की लालसा बेनीमाधव दास को एक द्वंद्वग्रस्त पात्र बना देती है। कामेच्छा और रामेच्छा में निरंतर द्वंद्व चलता रहता है। बेनीमाधव का गुरु पर भरोसा अटूट है। जब–जब उनका मन भटकता है तब–तब वे आत्मग्लानि, लज्जा और आत्मघृणा से भर उठते हैं। वे तुलसी से प्रश्न करते हैं कि क्या भोजन और काम–सुख यह दो अनुभव ऐसे हैं जिन्हें मनुष्य क्या,

BHDC-109_4th proof.indd 201 8/6/2021 2:09:11 PM

प्राणिमात्र बार–बार अनुभव करके भी जीवन भर नहीं अघाता और जबकि यह इतना व्यापक सत्य है तब इसे नकारना क्या उचित है? बेनीमाधव चाहते हैं कि तुलसी उन्हें रामू की तरह स्नेह और सम्मान दें। बेनीमाधव को रामू से ईर्ष्या होती है क्योंकि उन्हें लगता है कि तुलसी रामू को अधिक स्नेह देते हैं। बेनीमाधव के चरित्र को यदि तुलसीदास के चरित्र के समानांतर रख कर देखें तो एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि दोनों के जीवन में समानता दिखाई देती है। जैसे एक समय में तुलसीदास भी राम और काम के द्वंद्व के शिकार हुए थे, वे भी निरंतर इस पीड़ा से गुज़रते थे कि जब उन्होंने राम भक्ति में स्वयं को समर्पित कर दिया है तो क्यों निरंतर सांसारिक सुख उन्हें ललचाते हैं। वे भी स्वयं को निरंतर धिक्कारते हैं। अपने व्यवहार पर लज्जा अनुभव करते हैं परंतु महाकवि तुलसी दास बेनीमाधव दास की भाँति इस अवस्था में निरंतर डूबे नहीं रहते हैं अपितु लगन, तपस्या, साहस और रामभक्ति से अपने मन की कमज़ोरियों को दूर कर 'रामचरित मानस' जैसे महाकाव्य की रचना करते हैं।

11.3.2 अन्य महत्त्वपूर्ण चरित्र

पार्वती अम्माँ

पार्वती अम्माँ इस उपन्यास के प्रारंभ में आने वाली महत्त्वपूर्ण स्त्री चरित्र हैं। उपन्यास के प्रमुख चरित्र तुलसीदास को रचने और गढ़ने का दायित्व निभाने वाली पार्वती अम्माँ निश्चय ही एक विशिष्ट पात्र हैं। उपन्यास में पूर्वदीप्ति पद्धति के माध्यम से तुलसीदास, पार्वती अम्माँ का स्मरण करते हैं। ज्योतिषी पिता के घर में जन्मे बालक तुलसी के आगमन पर पत्नी के निधन से नवजात को अनिष्ट की आशंका मानकर पिता ने एक दासी को उसे सौंप दिया। दासी ने अपनी सास पार्वती अम्माँ को बालक सौंप दिया। जन्म से ही उपेक्षित और स्नेहहीन बालक को स्नेह का अवलंब देने वाली चरित्र पार्वती अम्माँ हैं।

ममतामयी– अपने घर से निष्काषित बालक को सहारा और ममता देने वाली पार्वती अम्माँ एक विलक्षण पात्र हैं। बाल्यावस्था में तुलसी जैसे अनाथ बालक का दायित्व सँभाला। स्वयं अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करते हुए भी तुलसी का पालन–पोषण किया। पार्वती अम्माँ दारिद्र्य के चलते भिक्षा से उदरपूर्ति करते हुए भी ममता से भरपूर थीं। उन्होंने बालक तुलसी को स्नेह और ममता से दुलराया और ईश्वर भक्ति की ओर भी प्रवृत्त किया। उपन्यास के अनेक अंशों में तुलसी पार्वती अम्माँ के ऋणी दिखाई देते हैं। वे अपनी कथा सुनाते हुए कहते हैं– ''मेरी आदि गुरु परम तपस्विनी पार्वती अम्माँ ही थीं। मानो शंकर भगवान ने मुझे जिलाए रखने के लिए ही जगदम्बा पार्वती को भिखारिन बनाकर भेज दिया था।''

विरुद्धों के सामंजस्य वाले गुणों से भरपूर– उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने तुलसी के जीवन को रचने की प्रक्रिया में पार्वती अम्माँ को सर्वोपरि रखा है। जाति में हीन, समाज में स्त्री और विपन्न आर्थिक स्थिति वाली पार्वती अम्माँ के प्रसंग में हर बार तुलसी आदरपूर्वक उनका स्मरण करते हैं। इसका प्रमुख कारण है पार्वती अम्माँ अपनी साधारण स्थिति में भी अपने विचारों, अपनी आस्थाओं और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि के कारण असाधारण चरित्र हैं। पार्वती अम्माँ की चर्चा आते ही तुलसीदास उनके चारित्रिक गुणों को बताते हैं– ''दरिद्रता में इतना वैभव, दुर्बलता में इतनी शक्ति और कुरूपता में इतनी सुंदरता मैंने पार्वती अम्माँ के अतिरिक्त औरों में प्रायः कम ही देखी।''

तुलसीदास ने अपने जीवन में अनेक स्त्रियों को निकट से देखा–जाना था। उनमें से वे पार्वती अम्माँ को यदि दरिद्रता में वैभवसम्पन्न कहते हैं तो यह वैभव उनके अनूठे संतोषी व्यक्तित्व का है। दुर्बलता में शक्ति है तो यह उनकी मन का अटूट साहस है। कुरूपता में सुंदरता है तो यह उनके सद्चरित्र और उदात्त जीवन का सौंदर्य है। इस तरह विरुद्धों के सामंजस्य से बना उनका व्यक्तित्व आकर्षित भी करता है और प्रेरित भी।

BHDC-109_4th proof.indd 202 8/6/2021 2:09:11 PM

आदिगुरु– वास्तविक माता न होते हुए भी पार्वती अम्माँ ने न सिर्फ तुलसी का भरण – पोषण किया बल्कि बालक को निष्ठा और सुरुचिपूर्ण तरीके से पाला। जिस बालक को जन्म से ही अपने घर से उपेक्षा मिली उसे जीते जी पार्वती अम्माँ ने कभी उपेक्षित नहीं किया। भक्तकवि तुलसी को भक्ति का मंत्र देने वाली पार्वती अम्माँ ही थीं। माँ बच्चे के जीवन की पहली गुरु होती है और तुलसी पार्वती अम्माँ को इसी रूप में सदा मानते रहे। एक निरक्षर स्त्री ने गुरु बनकर उन्हें भक्ति का मंत्र दिया। उपन्यास में राजा भगत द्वारा पार्वती अम्माँ के पढ़ाने–लिखाने के बारे में पूछे जाने पर तुलसी बतलाते हैं–'' पार्वती अम्माँ तो बेचारी मुझे इतना ही पढ़ा गईं कि जब–जब भीर पड़े तब–तब बजरंग बली को टेरो। कहो कि हे हनुमान स्वामी, तुम हमें राम जी के दरबार में पहुँचा दो जिससे कि हम अपनी भली–बुरी निवेदन कर लें।'' यही नहीं बाल्य अवस्था से ही भिक्षाटन से अपमान अनुभव करने वाले बालक तुलसी को समझाते हुए पार्वती अम्माँ कहती हैं–'' यह दुख नहीं तपस्या है बेटा। पिछले जनमों में जो पाप किए हैं वो इस जनम में तपस्या करके हम धो रहे हैं कि जिससे अगले जनम में हमें सुख मिले।'' जीवन की प्रतिकूलताओं और पीड़ा को सहने का पार्वती अम्माँ का बतलाया यह दर्शन विफल नहीं जाता। पार्वती अम्माँ की मृत्यु के बाद संघर्षों से जूझने में यह मंत्र सफल होता है। जीवन के अंतिम समय में इस दर्शन को तुलसी इस प्रकार समझते–समझाते हैं–''पार्वती अम्माँ सच ही कहती थीं कि जिससे राम जी तपस्या कराते हैं उसे ही दुख–दुर्भाग्य के अथाह समुद्र में भयंकर क्रूर तिमि–तिमिंगलों के बीच में छोड़ देते हैं। उनसे अपनी रक्षा करना ही अभागे की तपस्या कहलाती है। अब सोचता हूँ राम जी ने मुझ पर अत्यंत कृपा करके ही यह सारे दुख डाले थे। इन्हीं दुखों की रस्सी का फंदा डालकर मैं राम–नाम की ऊँची अटारी पर आज तक चढ़ता चला आया हूँ।''

इस तरह तुलसी जीवन के अभावों और अपमान को अपने स्नेहसिंचित भावों और सादगी से भरे आदर्शवादी व्यक्तित्व से भरने का साहस पार्वती अम्माँ जैसी विलक्षण स्त्रियों में ही दिखाया गया है। उपन्यास में पार्वती अम्माँ का स्थान उपन्यासकार ने बहुत ऊँचा आँका है जो अपनी विनम्रता, कर्त्तव्यपरायणता, सहनशीलता, सहज ज्ञान और प्रेम से तुलसी के बालमन पर एक ठोस प्रभाव अंकित करती हैं।

रामू

रामू बाबा तुलसीदास का शिष्य और भक्त है। वह बाल्यकाल में बाबा तुलसीदास के सान्निध्य में आ गया था। उसके व्यक्तित्व में अनेक गुण समाहित हैं। एक ओर वह निस्वार्थ सेवा करने वाला शिष्य भी है तो दूसरी ओर कर्त्तव्यनिष्ठा में उसका साहस अद्वितीय है। जीवन में कोई भी संकल्प हो वह उसे प्राणपण से निभाता है। भक्तशिरोमणि तुलसीदास से उसका परिचय करवाने वाले जटाशंकर का उसके विषय में कहना है–'' है तो बाबा यह रामू चौदह–पंद्रह बरस का लड़का ही, पर ऐसा तेज और फुर्तीला है कि जब आपके सामने आ जाएगा तो आप भी कहेंगे कि वाह जटाशंकर क्या ततैया भिड़ छाँट के लाए हैं। '' अपने इन्हीं गुणों के आधार पर काशी नगरी में फैली महामारी में गोस्वामी जी के आदेश पर वह उत्साही किशोरों को संगठित करता है और हनुमान दल निर्मित करके महामारी से जूझता है।

रामू का उत्साह और आदर गोस्वामी जी के प्रति अगाध–अकंपित है। प्रथम दर्शन के समय द्वार पर जटाशंकर के साथ मदद माँगने आए तुलसीदास को देखकर उसकी प्रतिक्रिया देखिए–'' जै बजरंग दादा अरे! अरे!!'' कहकर ढिबरी वहीं पर रखकर दो सीढ़ियाँ उतरने के बजाय सीधे गली में कूद पड़ा और गोसाईं जी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया।'' गोस्वामी जी से भेंट के बाद रामू अंतिम समय तक उनके साथ ही रहता है। उसके भीतर समर्पित शिष्यत्व और सेवाभाव है। तुलसीदास के रोग शैया पर पड़े होने की स्थिति में रामू का सेवा भाव देखते ही बनता है– ''उनके सारे शरीर में फुंसियाँ निकल आई हैं। मवाद की कीलें–सी पड़ जाती हैं। शरीर–भर से निकलती हैं। आज

BHDC-109_4th proof.indd 203 8/6/2021 2:09:11 PM

चार दिन हो गए, न रातों को नींद आती है और न चैन पड़ता है। बीच–बीच में मूर्च्छित हो जाते हैं। राजा, गंगाराम, कैलास, जयराम साहु, स्व. टोडरमल के पुत्र और पौत्र तथा काशी के दो नामी वैद्य कोठरी के भीतर उन्हें घेरकर बैठे हैं। रामू नीम के उबाले पानी से उनके घाव धोता और लेप लगाता चल रहा है।'' रामू से तुलसीदास की निकटता और रामू के स्वार्थहीन गुणों के कारण ही तुलसी उससे पुत्रवत स्नेह रखते हैं। रामू के विवाहोपरांत जब तुलसी उसे ससुराल वाले घर में रहने की आज्ञा देते हैं तो वह रोकर विनती करता है– ''प्रभु जी मेरे लिए इन चरणों से दूर रहना कठिन है। इनकी सेवा के अतिरिक्त मैंने आज तक कभी कुछ सोचा ही नहीं है। आप मुझे यह दंड न दें।'' तुलसी और रामू का संबंध पिता–पुत्र का संबंध है। जैविक रूप से पिता न होते हुए भी रामू को पुत्र मानने वाले तुलसी हर स्थिति में रामू की प्रगति की आकांक्षा रखते हैं। वे कहते हैं–'' यह दंड नहीं है पुत्र। मैं चाहता हूं कि मेरे जीवनकाल में तू व्यवस्थित होकर बैठ जा। अपनी पाठशाला चला और मानस की कथा सुनाया कर। उससे तेरी जीविका सुचारु रूप से चलेगी।'' जहाँ रामू अपने वास्तविक पिता के एक आदेश पर तुलसी के प्रति अपने जीवन को समर्पित कर देता है वहीं उसे पुत्रवत मानते हुए तुलसी भी उसके जीवन का विकास चाहते हैं। रामू में जिस पुत्र को वह देखते हैं वह उनकी भक्ति और ज्ञान की परंपरा का विकास करने वाला एक सच्चा साधक और आज्ञाकारी पुत्र है।

रामू की सेवाभावना से ही नहीं उसकी अध्ययनशीलता, उसके अद्‌भुत गायन और काव्योचित समर्थ गुणों के कारण रामू का तुलसीदास के जीवन में एक विशिष्ट स्थान है।

मेघा भगत

'मानस का हंस' उपन्यास में राम के एक भावुक भक्त के रूप में मेघा भगत की उपस्थिति दर्ज होती है। अपनी संक्षिप्त भूमिका के बावजूद अपनी भावप्रवणता से मेघा भगत भक्ति का एक अलग सोपान रचते हैं। उपन्यास में आद्योपांत मेघा भगत एक स्थिर चरित्र के रूप में अंकित हैं। वे आदि से अंत तक परिस्थितियों से निष्प्रभावी रहते हुए एक जैसे ही रहते हैं। राम की भक्ति में लीन मेघा भगत अपनी संगीत कला में भावों की उत्कृष्टता का संचार करके पूरी सभा को सम्मोहित कर देते थे। अमृतलाल नागर लिखते हैं–''मेघा भगत ने फिर क्रमशः अपनी भाव वाचालता में आना आरंभ कर दिया। अपनी कल्पना स्वयं अपने ही को सुनाने में तन्मय होकर यों सीता के खो जाने के बाद श्रीराम के विरह–प्रसंग को लेकर वे अपने जी का दुखड़ा बाँधने लगे... आरंभ में तुलसी अपने भीतर के दुख से सने हुए अनमने बैठे रहे फिर क्रमशः मेघा भगत के शब्द चित्र उनके कानों में गूँजने लगे। कल्पना के पट पर मनोपीड़ा अपने चित्र आँकने लगी।''

राम कथा के प्रति मेघा की दीवानगी को देखते हुए उन्हें बावला भी कहा गया है। रामकथा में राम के विरह वर्णन में करुणार्द्र और अश्रुपूरित होना उनके भगत का अन्यतम गुण है। उपन्यासकार के शब्द हैं–'' मेघा भगत का राम–विरह वर्णन पूर्ण हो चुका था। आँखें बंद किए आँसू बहाते हुए वे होंठों में बुदबुदा रहे थे। उनका मुख अपार शोकमग्न होकर और भी अधिक तेजस्वी हो उठा था। सहसा तुलसी ने धरती पर साष्टांग लेटकर भगत जी को प्रणाम किया और उठकर चल पड़े।'' तुलसी को मेघा भगत अपना छोटा भाई मानते हैं। मेघा इस नाते को राम–भरत सदृश ही मानते रहे।

मेघा की अचल भावप्रवण भक्ति के साथ उसके चरित्र में गहरी दार्शनिकता, निष्कपट प्रेम और भविष्य का अनुमान लगा पाने की प्रतिभा भी है। अनेक स्थितियों में मेघा भगत गोस्वामी तुलसीदास से बड़े भक्त प्रतीत होते हैं। राम के प्रति उनका समर्पण और उनकी प्राथमिकता सदा अकंपित रहती है। उनकी सहजता और सजीवता पाठक को आकर्षित करती है।

11.3.3 गौण पात्र

उपन्यास व्यापक जीवन का चित्रण करता है। उपन्यास में नायक के साथ–साथ अनेक ऐसे पात्र आते हैं जो कथा को संदर्भ, व्यापकता, विविधता और संलिष्टता प्रदान करते

BHDC-109_4th proof.indd 204 8/6/2021 2:09:11 PM

हैं। 'मानस का हंस' एक विस्तृत फलक का उपन्यास है अतः इस उपन्यास में बहुत सारे पात्र आते हैं जो अपनी भूमिका निभाते हैं। ये पात्र ऐसे ही होते हैं जैसे आप अपने आस–पास देखते हैं। मध्यकाल के धार्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनीतिक तथा आर्थिक परिवेश को इन चरित्रों के माध्यम से समझा जा सकता है। कथा में अनेक ऐसे पात्र हैं जो कथा नायक तुलसीदास के जीवन में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं तो अनेक ऐसे पात्र भी हैं जो तुलसीदास की राह में कदम–कदम पर रोड़े अटकाते हैं।

नरहरिबाबा

बालक रामबोला को तुलसीदास बनाने का श्रेय नरहरिबाबा को दिया जा सकता है। पार्वती अम्माँ की मृत्यु के पश्चात् बालक रामबोला जब हनुमान मंदिर में सेवा कर जैसे–तैसे अपना जीवन निर्वाह कर रहा था तब नरहरिबाबा एक देवदूत की भाँति कथा में आते हैं और रामबोला की श्रद्धा, श्रम, आत्मविश्वास और प्रतिभा से प्रभावित होते हैं और रामबोला को अपने साथ ले जाते हैं। नरहरिबाबा तुलसीदास को आचार्य शेष सनातन की पाठशाला में प्रवेश दिला देते हैं। यहीं से तुलसीदास के जीवन की दशा बदल जाती है। नरहरिबाबा एक पिता–अभिभावक की भाँति तुलसीदास को स्नेह देते हैं। रामभक्त, स्नेही, ज्ञानवान, शांतचित्त, धर्मज्ञाता नरहरिबाबा अगर न होते तो तुलसीदास को सम्भवतः और अधिक संघर्ष करना पड़ता। वे तुलसीदास के गुरु और मार्गदर्शक के तौर पर उपन्यास में आते हैं।

गंगाराम

उपन्यास में गंगाराम तुलसीदास के सहपाठी और बालसखा हैं। वे निरंतर तुलसीदास के बाल्यकाल की घटनाओं का वर्णन करते हैं। विशेषतः भूत–भय के प्रसंग का वर्णन वे बड़ी रोचकता के साथ करते हैं।

राजा भगत भी तुलसीदास के मित्र हैं। वे बिना किसी लाग–लपेट के तुलसीदास का आदर करते हैं। उनका सख्य भाव सहज है वे यदि तुलसीदास का आदर करते हैं तो साथ ही साथ अनेक विपदाओं में तुलसीदास का सहारा भी बनते हैं। जब तुलसीदास गृहत्याग करते हैं तो राजा भगत रत्नावली की सहायता करते हैं। इसी प्रकार से टोडरमल भी जब–जब तुलसीदास को आवश्यकता होती है तब–तब उनकी सहायता के लिए खड़े दिखाई देते हैं। वे तुलसीदास के भक्त और अनुयायी हैं। कैलाश और बकरीदी भैया भी उपन्यास को विस्तार देते हैं।

ये सभी पात्र सकारात्मक हैं। इनके अतिरिक्त अनेक नकारात्मक पात्र भी उपन्यास में आते हैं, जैसे पुत्तन महाराज। **पुत्तन महाराज** बाल्यकाल में तुलसीदास को बहुत अधिक प्रताड़ित करता है। अबोध रामबोला यह समझ भी नहीं पाता कि क्यों पुत्तन महाराज उससे इतनी घृणा करते हैं? इसी प्रकार जब शेष सनातन की पाठशाला में तुलसीदास अपनी प्रतिभा और साहस से अपना सिक्का जमाने लगते हैं तब उनके बटेश्वर जैसे कई सहपाठी भी उनके विरुद्ध हो जाते हैं। जीवन में आगे बढ़ने पर बंगाली पंडित रविदत्त तुलसीदास की प्रसिद्धि से जलता है तथा उसे 'मारक–जल–पूत–मंत्र' से मारने का प्रण लेता है। एक पुजारी होते हुए भी घृणावश वह तुलसीदास के लिए अपशब्दों का प्रयोग करता है। जब तुलसीदास अयोध्या आते हैं तो वहाँ भी उन्हें वहाँ के स्थानीय पंडों–पुरोहितों से विरोध का सामना करना पड़ता है। वैदेहीवल्लभचरणकमलरज–धूलिदास तुलसीदास की प्रतिष्ठा को नष्ट करने तथा उन्हें मारने का षड्यंत्र रचता है। रविदत्त बाद में तुलसीदास से क्षमा माँग लेता है।

इन पात्रों के अतिरिक्त कई ऐसे पात्र हैं तो उस समय की राजनीतिक स्थिति के परिचायक हैं। अदहमखान, अब्दुल्ला बेग, आगानूर इसी प्रकार के पात्र हैं।

बोध प्रश्न 2

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक–एक पंक्ति में दीजिए :

क) तुलसीदास के पिता ने उन्हें क्यों त्याग दिया था?

BHDC-109_4th proof.indd 205 8/6/2021 2:09:11 PM

ख) तुलसीदास के चरित्र के निर्माण में उपन्यासकार ने किन ग्रंथों का सहारा लिया?

ग) तुलसीदास का बचपन का नाम क्या था?

घ) रामू ने कौन सी नगरी में महामारी के लिए किशोरों को संगठित किया था?

च) मेघा भगत का कौनसा गुण उन्हें भक्तों में विशिष्ट बनाता है?

छ) तुलसीदास की आदिगुरु कौन थीं?

3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिएः

क) तुलसीदास का नामकरण ..... ने किया था।

ख) बाल्यकाल में रामबोला का शत्रु ..... था।

ग) अयोध्या में तुलसीदास को मारने का षड्यंत्र ..... रचता है।

4. निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न के उत्तर लगभग पाँच या अधिक पंक्तियों में दीजिए–

क) उपन्यास में तुलसीदास के व्यक्तित्व में कौन–से साधारण गुण दिखाए गए हैं?

ख) पार्वती अम्माँ का बालक रामबोला के जीवन में क्या स्थान था?

ग) मोहिनी कौन थी? उसका तुलसीदास से क्या संबंध था?

घ) रत्नावली और तुलसी का गृहस्थ जीवन कैसा था?

ङ) बेनीमाधवदास का तुलसी के जीवन में क्या स्थान था?

11.4 उपन्यास के चरित्र संयोजन में लेखक की दृष्टि

'मानस का हंस' उपन्यास के चरित्र संयोजन में लेखकीय दृष्टि विविध आयामों तक जाती है। एक ऐतिहासिक चरित्र की निर्मिति के साथ–साथ उपन्यासकार अमृतलाल नागर कथा का संयोजन करते हुए मध्यकाल के विवादित बिंदुओं को आधुनिक दृष्टि से दिखाते हैं। इसमें सगुण–निर्गुण विवाद मुख्य रूप से सामने रहता है जिसमें तुलसी की समन्वयवादी दृष्टि को चरित्र संयोजन में प्रमुखता दी गई है। साथ ही उपन्यासकार का उद्देश्य रामबोला से महाकवि तुलसीदास की यात्रा पूरी करने वाले चरित्र को दैवीय पात्र बनाने का भी नहीं रहा है। यही कारण है चरित्र संयोजन में उपन्यासकार की आधुनिक दृष्टि के कारण ही तुलसीदास गृहस्थी में रमे और साधारण मनुष्य की तरह पैसा कमाने वाले भी दिखाए गए हैं। राम और काम का द्वंद्व भी उनकी इस छवि को और उभारता है। कालांतर में बड़े आदर्शों की प्राप्ति के लिए सांसारिक सुखों को त्यागकर वे संत की राह पर अग्रसर होते हैं। इस तरह तुलसी के चरित्र को लेखक ने आधुनिक दृष्टि से दिखाया जिसके कारण वह एकरेखीय भी नहीं हो पाया है।

तुलसीदास की उदारता का प्रसंग भी चरित्र संयोजन में महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्महत्या के दोषी को शरण देकर कहीं न कहीं वे उस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं कि पाप से घृणा करो पापी से नहीं। तुलसीदास कहते हैं–'' वह जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी कर्म से अधम था। तुम्हारी जगह और कोई व्यक्ति होता तो वह आवेश में ऐसा काम कर सकता था। खैर अब तुम जाओ, कहीं दूर देश निकल जाओ। समझ लो कि तुम नया जन्म पा रहे हो।''

तुलसीदास के जीवन प्रसंग के इस वर्णन में लेखक की आधुनिक दृष्टि दिखाई देती है। एक तरफ वर्ण पर कर्म की सर्वोच्चता को स्थापित कर अमृतलाल नागर जाति–व्यवस्था की अप्रासंगिकता को स्थापित करते हैं तो दूसरी तरफ मानवतावाद को स्थापित भी करते हैं। अमृतलाल नागर यह स्थापित करना चाहते हैं कि मनुष्य किस जाति–धर्म में

BHDC-109_4th proof.indd 206 8/6/2021 2:09:11 PM

पैदा हुआ यह महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु उसने समाज के लिए विशेषतः समाज के दलित तथा कमज़ोर वर्ग के लिए क्या किया है यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

बोध प्रश्न 3

5. 'मानस का हंस' उपन्यास में अमृतलाल नागर की आधुनिक दृष्टि का परिचय लगभग 5 पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 सारांश

इस इकाई में आपने 'मानस का हंस' उपन्यास के चरित्रों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। इकाई में उपन्यास की चरित्र योजना का महत्त्व, चरित्रों की श्रेणियों के साथ ही चरित्र–चित्रण की प्रमुख प्रविधियों–विश्लेषणात्मक, संवादपरक और मनोवैज्ञानिक को समझाया गया। उपन्यास के प्रमुख चरित्रों–तुलसीदास, रत्नावली, मोहिनी, पार्वती अम्माँ, मेघा भगत, रामू आदि के विषय में विस्तारपूर्वक बताया गया जिससे आप तुलसी के जीवन में उनके योगदान को समझ सकें। प्रमुख चरित्रों की उत्कृष्टता के साथ मनुष्योचित सामान्य दुर्बलताओं का मूल्यांकन हमने किया है। साथ ही उपन्यास के गौण चरित्रों का चरित्रांकन भी इस इकाई में विस्तार से किया गया है। उपन्यास के चरित्र संयोजन में लेखकीय दृष्टि का पक्ष भी इकाई में सम्मिलित है जिससे ऐतिहासिक कथा को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में दिखाने की उपन्यासकार की दृष्टि से हम भली–भाँति परिचित होते हैं।

11.6 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1

''मैं निर्गुण का विरोध कभी नहीं करता। सगुण–निर्गुण दोनों एक ही ब्रह्म के स्वरूप हैं। वे अकथ, अगाध, अनादि और अनूप हैं। मैं तो केवल उन लोगों का विरोध करता हूँ जो कबीर साहब के वचनों की आड़ लेकर समाज की धार्मिक आस्थाओं के निकम्मे आलोचक हैं। कबीर साहब को राम–धाम–लाभ हुए सौ–डेढ़ सौ वर्ष बीत गए किंतु जब से लेकर अब तक वे और उनके पथगामी तीव्र प्रहार करके भी जन–मन के हृदयमंदिर से रावण हंता रामभद्र की मूर्ति भंजित नहीं कर पाए।''

संदर्भ

एक बार जब बाबा तुलसीदास काशी में मेघा भगत से मिलने पहुँचते हैं तो वहाँ पर नगर के अनेक गणमान्य तथा युवा लोग एकत्र हो जाते हैं तब प्रस्तुत प्रसंग उपन्यास में आता है। युवा पंडित मंडली सगुण–निर्गण के विषय में तुलसीदास से वाद–विवाद करती है। एक युवक ताना मारते हुए व्यंग्य में प्रश्न करता है कि यदि वे मन से कबीरदास जी का सम्मान करते हैं तो गली–गली सगुण का समर्थन और निर्गुण का विरोध करते क्यों फिरते हैं। प्रस्तुत अंश इसी प्रश्न का उत्तर है।

BHDC-109_4th proof.indd 207 8/6/2021 2:09:11 PM

व्याख्या

तुलसीदास युवा पंडित मंडली के तीखे प्रहारों से विचलित नहीं होते। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि सगुण और निर्गुण में कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनों ही ब्रह्म के रूप हैं। निर्गुण, निराकार ब्रह्म भी ईश्वर है और सगुण साकार। इससे पूर्व तुलसीदास कबीरदास जी के महत्त्व को स्वीकारते हैं कि जिस समय जनता को मंदिरों में जाने के अवसर नहीं थे तब कबीरदास जी ने जनता में राम को निर्गुण रूप में स्थापित कर दिया। वे कबीरदास जी के समाज–सुधारक रूप की प्रशंसा भी करते हैं। तुलसीदास एक तरफ धर्म की आड़ लेकर धर्म के ठेकेदारों की तीव्र आलोचना करते हैं तो दूसरी तरफ वे स्वस्थ धार्मिक परम्पराओं की रक्षा को प्राथमिकता देना चाहते हैं। वे कहते हैं कि राम का सगुण रूप जनमंदिर में विराजमान है। आज तक भी अन्यायी रावण का दमन करने वाले जनहितकारी राम की मूर्ति जनता के हृदयमंदिर से विलुप्त नहीं हुई है। अतः तुलसीदास निर्गुण–निराकार रूप को अस्वीकारते नहीं हैं परंतु सगुण रूप को प्रमुख मानते हैं। उसकी जनव्याप्ति का हवाला देते हैं।

विशेष

1. इस अंश में तुलसीदास की सगुणोपासक छवि को उपन्यासकार ने प्रमुखता से अंकित किया है।
2. इस अंश का महत्त्व तुलसीदास की समन्वयकारी दृष्टि को उजागर करना है जो सगुण–निर्गुण में भेद नहीं करती।
3. तुलसी की अध्ययनशीलता और विवेकशील दृष्टि को उजागर किया गया है।
4. यह अंश संवादपरक है और इसकी भाषा ओजगुण सम्पन्न है।

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. क, ख एवं ग के उत्तर के लिए देखें इकाई का भाग 11.2।

बोध प्रश्न 2

2. अति संक्षिप्त उत्तर
   - क) अभुक्तमूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण।
   - ख) 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका'।
   - ग) रामबोला।
   - घ) काशी।
   - च) भावप्रवणता।
   - छ) पार्वती अम्माँ।
3. रिक्त स्थान की पूर्ति

   उत्तर– क) बाबा नरहरि दास ख) पुत्तन महाराज

   ग) वैदेहीवल्लभचरणकमलरजधूलिदास

   प्रश्न– क) से ङ) के उत्तर के लिए इकाई के भाग 11.3 का पुनः अध्ययन कीजिए।

बोध प्रश्न 3

5. उत्तर के लिए देखें इकाई का भाग 11.4 ।

BHDC-109_4th proof.indd 208 8/6/2021 2:09:11 PM